लाहौर
पञ्जाब एकानोमीकल यन्त्रालय में
प्रिण्टर लाला लालमणि जैनी
के अधिकार से छपा।

प्रशंसापत्र ।

OPINIONS OF THE WELL-KNOWN PUNDITS.

नोचित्रं यदि पूरुषा निजधिया ग्रन्थं विदध्युर्नवं यस्माज्जन्मत एव शास्त्रसरणौ तेषां गतिर्विद्यते ॥ आश्चर्य्यं खलु तत्स्त्रियाऽप्यरचि यल्लोके नवं पुस्तकं यस्मात्सर्गत एव मन्दमतयस्ताःसंसृतौ विश्रुताः ॥ १ ॥

अर्थ--अगर पुरुष अपनी अकल से कोई नया ग्रंथ बनाए तो कोई आश्चर्य्य नहीं क्योंकि उन की जन्म ही से लेकर शास्त्र की सड़क पर सैर हो रही है । आश्चर्य्य तो यह है कि स्त्री होकर कोई नया पुस्तक बना दे क्योंकि स्त्रियों को संसार में कम अकल ख्याल करते हैं । १ ।

मूर्त्यर्च्चा विहिता नवेति मतयो रन्त्यस्य

निर्णायकं वादिप्रत्यभिवादिवादनियत प्रश्नात्त-
रालङ्कृतम् ॥ युत्तयुक्ति प्रविभूषितं प्रति पदं
सूत्रप्रमाणान्वितं वाढं स्त्युत्य मिदं सुपुस्तक
मिदं श्रीपार्वती निर्मितम् ॥ २ ॥

अर्थ—श्री पार्वती जी का बनाया हुआ यह पुस्तक मेरी राय में बहुत तारीफ के लायक है जोकि मूर्ति पूजा करनी चाहिये वा नहीं करनी चाहिये इन दोनों मतों में से आखीर के मत को यानि नहीं करनी चाहिये इस को निर्णय कर रहा है और वादि प्रतिवादियों के वाद में जो प्रश्नोत्तर होते हैं उन प्रश्नोत्तरों से भूषित है, और युक्तियें और प्रत्युक्तियां भी जिस में बहुत अच्छी हैं और हर एक जगह हर एक विषय पर सूत्रों के प्रमाण जिस में दिये गये हैं ॥

आबालमा वार्द्धक मेव रूप
दृष्टं मनःशान्त रसं तदीयम् ॥
अश्रावि शिष्येण न किंचिदन्यत्तस्या
मुखाज्जैन मतोपदेशात् ॥ ३ ॥

अर्थ—पार्वतीदेवी जो वह हैं जिन के मन को बालकावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक हर किसी ने शान्त रसमय मालूम किया है और जिन के मुख से जैन मतोपदेश के सिवाय शिष्यों ने भी आजतक कभी दूसरा शब्द नही सुना।

वसता लवपुर मध्ये छात्रान् शास्त्रं प्रवेशयता॥
संमति रत्र सुविहिता दुर्गादत्तेन सुविलोक्य॥

पं०दुर्गादत्त शास्त्री अध्यापक औ०का०
लाहौर।

I have seen the book entitled "Satayartha Chandrodaya Jain" written by Srimati Sattee Parbatiji. It is against *murtipujan*, and the authoress proves by quotations from the Jain Sutras that *murtipujan* is not dictated in the *said Sutras* The book is in a very good style and the arguments are well arranged which show that the writer has done justice to the subject according to the Jain scriptures

P TULSI RAM, B A,

8th May 1905. LAHORE.

॥ श्रीः ॥

विज्ञानरश्मिचय रञ्जित पक्षपात पतित सहृदय हृदयाब्जमुकुल विस्फार लब्धयथार्थ नाम, मिथ्यातिमिर नाशकमेतत् पुस्तकञ्जैन धर्मभाषानिवन्धललाम सारगर्भितञ्च उपक्रमोपसंहार पूर्वकं सर्वम् मयावलोकितम्।

इति प्रमाणीकरोति।

लाहौर डी०ए०वी० कालेज

प्रोफेसर।

पण्डित राधाप्रसाद शर्मा शास्त्री।

यन्निर्मात्री

सुगृहीतनाम धेयासती बालब्रह्मचारिणी श्रीमती पार्वतीदेवी, सम्भाव्यतेच,

यत्-

मूर्तिपूजामसन्वानामन्येषामपिगुणगृह्याणा
मेतत् पश्यताम्मनोह्लादो भवेदिति ॥

ह॰पण्डित राधाप्रसाद शास्त्री ।

ॐ

दुवैया छन्द ॥

अहो विचित्र न मोको भासे पुरुष रचें जो ग्रंथ नवीन । अवला रचें ग्रन्थ जो अद्भुत यही अचम्भो हम ने कीन ॥ प्राकृत भाषा का जो हारद हिन्दी मांहि दिखाओ आज । तांते धन्य-वाद का भांजन है अवला सबहन सिर ताज १ निज २ धर्म न जाने सगले पुरुषन में ऐसी है चाल । तो किम अवला लखे धर्म निज याही ते पड़ता जंजाल ॥ विद्यावल से पाया यो-

षित ने लख्यो धर्म निज पुन आचार। लोगन हित पथ रच्यो ग्रन्थ यह यथा सेतु रच नृप उपकार ॥ २ ॥ दयानन्द ने एस लिखा था सत्यार्थ प्रकाशे ठीक। मूर्तिपूजाके आरंभक हैं जैनी या जग में नीक ॥ पर अवलोकन कर यह पुस्तक संशय सकल भये अब छीन। तांते धन्यवाद तुहि देवी तूं पार्वती यथार्थ चीन। ३। साधारण अवला में ऐसी होइ न कबहूं उत्तम बुद्ध। तांते यह अवतार पछानो कह शिवनाथ हृदय कर शुद्ध॥ बार २ हम ईश्वर से अब यह मांगे हैं बर कर जोर। चिरंजीवि रह पर्वत तनया रचे ग्रंथ सिद्धान्त निचोर। ४।

दोहा—पण्डित योगीनाथ शिव।

लिखी सम्मति आप॥

लवपुर मांहि निवास जिह ।
शंकर के प्रताप ॥ ५ ॥

अलौकिक बुद्धिमती परोपकारिणी सकल शास्त्रनिष्णाता जैनमत पथ प्रदर्शिका ब्रह्मचारिणी महोपदेशिका श्रीमती श्रीपार्बती द्वारा रचित तथा स्ववंश दिवाकर सद्गुणाकर जैन धर्मप्रवर्तकपरोपकारनिरत संस्कृत विद्यानुरागी देशहितैषी लाला मेहरचन्द्रलक्ष्मणदास द्वारा मुद्रापित सत्यार्थचन्द्रोदय नामक ग्रन्थ का मैं ने आद्योपान्त अवलोकन किया है इसमें ग्रन्थ कर्त्रीने बड़ी सुगमता से जैनशास्त्रानुसार अनेक दुर्भेद्य प्रमाणों से मूर्तिपूजन का खण्डन करके जैनमतानुयायियों के लिए जैनधर्मका प्रकाश किया है, जैनधर्मानुरागियों से प्रार्थना है कि

अन्वित नाम युक्त सत्यार्थचंद्रोदय को पढ़कर स्वजन्म सफल करें और प्रकाशक (मुद्रापक) के उत्साह को बढाए।

पार्वती रचितो ग्रन्थो जैन मत प्रदर्शकः।
प्रीतयेस्तु सतां नित्यं सत्यार्थ चन्द्र सूचकः॥

१४।५।१९०५ गोस्वामि रामरंग शास्त्री मुख्य संस्कृताध्यापक राजकीय पाठशाला लाहौर।

सत्यार्थ चन्द्रोदयजैन।

इस पुस्तक में यह दिखलाया है कि मूर्ति-पूजा जैनसिद्धान्त के विरुद्ध है। युक्तियें सब की समझ में आने वाली हैं और उत्तम हैं दृष्टान्तों से जगह २ समझाया गया है। और फिर जैनधर्म के सूत्रों से भी इस सिद्धान्त को

पुष्ट किया है जैनधर्म वालों के लिये यह ग्रंथ अवश्य उपकारी है ॥ * * * *

राजाराम पण्डित

सम्पादक आर्यग्रन्थावली,

लाहौर ॥

ਇਸ ਪੁਸਤਕ ਨੂੰ ਜਦ ਮੈਂ ਡਿੱਠਾ ਪੜ੍ਹੀ ਹਕੀਕਤ ਸਾਰੀ।
ਜੈਨ ਧਰਮ ਦੀ ਹੈ ਇਹ ਪੂੰਜੀ ਹਿੰਦੀ ਵਿੱਚ ਨਿਆਰੀ॥
ਬਹੁਤੇ ਪੁਸਤਕ ਡਿੱਠੇ ਭਾਲੇ ਰਚੇ ਮਨੁੱਖਾਂ ਜੋਈ।
ਪਰ ਨਾਰੀ ਦੀ ਰਚਨਾ ਚੰਗੀ ਸੁਨੀ ਨ ਡਿੱਠੀ ਕੋਈ॥੧॥
ਸਾਬਾ ਤੈਂ ਨੂੰ ਰਚਨੇ ਵਾਲੀ ਚੰਗਾ ਰਾਹ ਦਿਖਾਯਾ।
ਜੈਨ ਧਰਮ ਦਾ ਝਗੜਾ ਸਾਰਾ ਇਸ ਵਿੱਚ ਚਾਇਮੁਕਾਯਾ।
ਪੂਜ ਢੂੰਢੀਆਂ ਦਾ ਜੋ ਮੱਤਲਬ ਮੂਰਤ ਪੂਜਾ ਵਾਲਾ।
ਸਾਬ ਹਵਾਲਾ ਦੇ ਕੇ ਸਾਰਾ ਦੱਸਿਆ ਰਾਹ ਸੁਖਾਲਾ॥੨॥
ਜੋ ੨ ਪੜ੍ਹੇ ਭਰਮ ਸਬ ਖ਼ੋਵੇ ਜਾਨੇ ਧਰਮ ਪੁਰਾਨਾ।
ਵਾਹ ਵਾ ਆਖਨ ਤੋ ਕੀ ਆਖਾਂ ਹੋਰ ਨ ਮੈਂ ਕੁਝ ਜਾਨਾ॥

ਮੈਂ ਹੁਣ ਹੋਰ ਨਹੀਂ ਕੁਝ ਕਹਿੰਦਾ ਦੇਵਾਂ ਲੱਖ ਅਸੀਸਾਂ।
ਪਰਮੇਸਰ ਖੁਸ ਰੱਖੇ ਤੈਂਨੂੰ ਲੱਖ ਕਰੋੜ ਬਰੀਸਾਂ ॥੩॥
ਜੇਕਰ ਏਹੋ ਜੇਹੇ ਪੁਸਤਕ ਰਚਨ ਔਰਤਾਂ ਭਾਰੀ।
ਤਾਂ ਫਿਰ ਮਰਦਾਂ ਨੂੰ ਇਹ ਵਾਜਬ ਵਿਦਯਾ ਪੜ੍ਹਨ ਕਰਾਰੀ
ਵਿੱਚ ਲਾਹੌਰ ਦੇ ਮੈਂ ਇਹ ਲਿਖਿਆ ਆਪਨਾ ਮਤਲਬ ਸਾਰ।
ਜਸਵੰਤਨਾਥ ਜੁਗੀਸ੍ਵਰ ਮੈ ਨੂੰ ਆਖਨ ਲੋਕ ਪੁਕਾਰ॥੪॥

स्थानाभाव से बाकी प्रशंसा पत्र छोड़ दिये गये हैं ॥

मेहरचन्द्र

लक्ष्मण दास,

सैदमिट्ठा बाजार लाहौर ॥

शुद्धि पत्र ॥

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१३	साहत	सहित
२	१४	जस	जिस
३	५	पाषाणादिक	पाषाणादिका
५	२	कत	तक
८	१	ह	है
८	७	स्थम्भादिक	स्तम्भादिक
८	१२	पाषाणादि	पाषाणादिक
१३	४	पूण	पूर्ण
१४	९	क्षत्री	क्षत्रिय
१४	१०	सत्यवादि	सत्यवादी
१५	५	स्थम्भादि	स्तम्भादिक
१६	४	गुण	गुणों
१८	२	निक्षेप	निक्षेपे
१८	९	सम्यक्तशल्याद्धार	सम्यक्तशल्योद्धार
१८	११	सा	सो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	५	जाणिज्जो	जाणिज्जा
२०	८	जा २	जो २
२०	९	निर्विशष	निर्विशेष
२०	११	निक्षेप	निक्षेपे
२१	११	सवत्	सम्वत्
२२	१४	मी	में
२३	४	विद्यार्यों	विद्यार्थी
२५	१	तें	ते
२६	३	मयी	मय
२६	१०	भविष्यतादि	भविष्यदादि
२७	३	हुये	हुए
३०	१०	उदारिक	औदरिक
३६	४	पीलादी	पिलादी
३८	१३	हुये	हुए
३९	६	चित्रशाली	चित्रशाला
४३	१३	सिवा	सिवाय
४६	५	सिर	सिर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५५	१२	नहाँ	नहीं
५५	१४	अजर	अज
५५	१५	नराकार	निराकार
६०	११	मंदर	मंदिर
६१	८	यावद्	यावत्
६२	३	जरूत	जरूरत
६४	३	यावद्काल	यावत्काल
६४	३	तावद् काल	तावत् काल
६८	४	चैतन	चेतन
६९	७	प्रश्न	(१२) प्रश्न।
७०	११	हं	हैं
७०	१४	ाक	कि
७१	१	ह	हैं
७१	११	प्रमाणीक	प्रामाणिक
७२	४	प्रमाणीक	प्रामाणिक
७२	८	प्रमाणीक	प्रामाणिक
७३	१	पूर्वक	पूर्व

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७६	३वा१०	प्रमाणीक	प्रामाणिक
८४	४	करानादिक	कराना आदि
८६	९	कहि	कहीं
९०	१०	मद	मद्य
९०	१५	मद	मद्य
९१	९	मद	मद्य
९२	१	असन	अशन
९२	२	मासं	मांस
९६	३	प्रमाणीक	प्रामाणिक
१०१	५	पजने	पूजने
१०३	४	उप्पाणं	उप्पाएणं
१०३	१३	दीप	द्वीप
१११	११	दुर्गगन्धी	दुर्गन्धी
११६	१२	साधुयों	साधुओं
१२७	१४	राजायों	राजाओं
१२८	४	आसा	आशा
१२९	१२	क्रियायों	क्रियाओं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३८	४	भर्तादि	भरतादि
१३९	१०	डिंभ	दम्भ
१३९	१०	मदोन मत्तों	मदोन्मत्तों
१४०	१	निचले	चिनले
१४०	७	सावद्याचार्यों	सावद्याचार्य्यं
१४१	१	प्रमाणीक	प्रामाणिक
१४७	७	पण्णन्त	पण्णंत्ता
१४७	१२	गोपमा	गोयमा
१४७	१४	थम्मं	धम्मं
१४९	१०	ह	है
१५१	१५	बर्षों	वर्षों
१५२	२	हा	हो
१५४	४	परिगृह	परिग्रह
१५४	१४	जैनतत्वदश	जैनतत्वादर्श
१५५	१	कुछतो	कुछ
१५५	१०	निर्पक्षी	निष्पक्षी
१५६	१	आमनाय	आम्नाय
१५६	३	ह	है

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५६	११	भ्राता	भ्रातः
१५८	५	प्रमाणीक	प्रामाणिक
१५९	१०	प्रमाणीक	प्रामाणिक
१६०	५	कारण यह है कि	कारण के वास्ते ००
१६१	३	विजयजीने तो इसीलिये विक्रमी	विजय जी• ने विक्रमी
१६२	२	वैराग	वैराग्य
१६३	१२	रहिते थे	रहते थे
१६४	११	आदिक लोद	लोद आदिक
१६४	११	वस्त्रपर रंग	वस्त्र को रंग देना
१६४	१२	देवेती	देवे तो
१६६	४	आय	आर्य्या
१६८	३	संवेग	संवेगी
१६९	१२	मुखे	मुखे
१७०	१४	उदथ	उदय
१७३	१२	विपे	विष
१७५	७	मद	मद्य
१७५	७	अभचादि	अभच्यादि

प्रस्तावना

इस संसार में प्राणी मात्र को धर्म्म का ही शरण है, जन्म से मरण पर्य्यंत धर्म्म ही प्राणी मात्र का सहायक है, इस कलियुग में प्रायः बहुत सी कक्षा धर्म की होगई हैं और सब अपने २ धर्म की स्तुति करते हैं, आजकल प्रायः जैनी भाइयों में से भी बहुत से अल्प-ज्ञता के कारण अपने सच्चे केवली भा-षित दयामय धर्म्म को त्यागकर दूसरे सावद्य आचार्य्यों से कथित (हिंसा बिना धर्म नहीं होता अर्थात् हिंसा में धर्म है) ऐसे मतों को अङ्गीकार कर लेते हैं जिस से इस देश में बहुतसे श्रावकजन गणधर कृत सूत्र सिद्धान्त

के न जानने वा न सुनने के कारण दूसरों के कल्पित ग्रन्थों के हेतु कुहेतु सुन कर भ्रमरूपी फन्दे में फंस जाते हैं, इन क्लेशों के निवारण करने के लिये सत्यार्थ चन्द्रोदय जैन अर्थात् मिथ्यात्त्वतिमिर नाशक नाम ग्रन्थ बनाने की मुझे आवश्यकता हुई। सुज्ञ जनोंको विदितहो कि इस ग्रन्थ में जो सनातन जैनमतमें दो शाखें होगई हैं अर्थात् १ श्वेताम्बराम्नाय और दूसरे २ दिगम्बराम्नाय, श्वेताम्बराम्नायमें भी २ दो भेद होगये हैं १ सनातन चेतन पूजक (आत्मा-भ्यासी) दया धर्म्मी श्वेत बस्त्र, रजोहरण मुख बस्त्रिका वालेसाधु, जो सर्बदा सत्याऽसत्य की परीक्षा कर असत्य का त्याग और सत्यका ग्रहण करने वालेह जिनको(ढूंढिये)भी कहते हैं २य, जड़ पूजक (मूर्तिपूजक)जिसमें श्वेताम्ब-

राम्नाय से विरुद्ध थोड़े काल से पीताम्वर धारियों की एक और शाखा निकली है क्योंकि श्वेताम्बरी नाम श्वेतवस्त्र वाले का होता है श्वेतका अर्थ सुफैद और अम्बरका अर्थ वस्त्र है सो शब्दार्थ से भी यही सिद्ध होता है कि श्वेताम्बरी वही होसकता है जो श्वेत वस्त्र वाला साधुहो, इसलिये यह पीतवस्त्रधारीसाधु अपने आपको जैन शास्त्रसे विरुद्ध श्वेताम्बरी कहते हैं,यहप्रायःमूर्ति पूजाका विशेष आधार रखते हैं, इसलियेइसपुस्तकमेंनिक्षेपोंका अर्थसहित और युक्ति प्रमाण द्वारा स्पष्ट रीतिसे मूर्ति पूजा का खण्डन किया गया है और जो मूर्ति पूजक सूत्रों में से 'चेइय' शब्द को ग्रहण करके मूर्ति पूजने का भ्रम स्वल्प बुद्धिजनों के हृदयमें डालते हैं। इसभ्रम काभी संक्षेप रीतिसे सूत्रोंके प्रमाण

द्वारा खण्डन किया गया है, इस ग्रन्थ के आद्योपान्त बाचने से स्व संप्रदायी तथापर संप्रदायी चार तीर्थों में से कई एक सुज्ञजन नर वा नारियोंका शंकारूपी रोग दूर होगा और बहुतों की कुतर्कोंका उत्तर देना सुगम हो जायगा इत्यर्थः ॥

सूची पत्र ॥

विषय — पृष्ठ

नं०	विषय	पृष्ठ

नं० विषय पृष्ठ

नं०	विषय	पृष्ठ

नं० विषय पृष्ठ

नं०　　विषय　　पृष्ठ

पञ्चपरमेष्टिने नमः ।

श्रीअनुयोगद्वार सूत्रमें आदि ही में वस्तुके स्वरूपके समझनेके लिएवस्तुके सामान्य प्रकार सेचार निक्षेपे निक्षेपने(करने)कहे हैं यथा नाम निक्षेप १ स्थापना निक्षेप २ द्रव्यनिक्षेप ३ भाव निक्षेप ४ अस्यार्थः—नामनिक्षेप सो वस्तुका आकार और गुण रहित नाम सो नामनिक्षेप १ स्थापना निक्षेप सो वस्तुका आकार और नाम सहित गुण रहित सो स्थापना निक्षेप २ द्रव्य निक्षेप सो वस्तुका वर्तमान गुण रहित अतीत अथवा अनागत गुण सहित और आकार नाम भी सहित सो द्रव्य निक्षेप ३ भाव निक्षेप सो वस्तुका नाम आकार और वर्तमान गुणसहित सो भाव निक्षेप ४ ।

अथ चारो निक्षेपोंका स्वरूप मूल सूत्र और दृष्टांत सहित लिखते हैं।

यथासूत्रम्

सेकिंतं आवस्सयं आवस्सयं चउविहं पन्नत्तं तंजहा नामावस्सयं १ ठवणावस्सयं २ दव्वा- वस्सयं ३ भावावस्सयं ४ सेकिंतं नामावस्सयं नामावस्सयं जस्सणं जीवस्सवा अजीवस्सवा जीवाणंवा अजीवाणंवा तदुभयस्सवा तदुभया णंवा आवस्सएति नामं कज्जइसेत्तं नामाव॰ स्सयं १ अस्यार्थः।

प्रश्न–आवश्यक किस को कहिये उत्तर अ- वश्य करने योग्य यथा आवश्यक नाम सूत्र जसको चार विधिसे समझनाचाहिये। तद्यथा

नाम आवश्यक १ स्थापना आवश्यक २ द्रव्य आवश्यक ३ भाव आवश्यक४ प्रश्न नामआवश्यक क्या । उत्तर—जिस जीव का अर्थात् मनुष्यका पशु पक्षी आदिकका तथा अजीव का अर्थात् किसी मकान काष्ठ पाषाणादिक जिन जीवोंका जिन अजीवों का उन्हे दोनोंका नाम आवश्यक रखदिया सो नामआवश्यक १

सेकिंतं ठवणावस्सयं २ जण्णं [1] कठकम्मेवा [2] चित्तकम्मेवा [3] पोथकम्मेवा [4] लेपकम्मेवा [5] गंठिम्मेवा [6] वेढिम्मेवा [7] पुरीम्मेवा [8] संघाइमेवा [9] अरकेवा [10] वराडएवा एगोवा अणेगोवा [11] सज्झाव ठवणा [12] एवा असज्झाव ठवणा एवा आवस्स ए.ति ठवणा कज्जइ सेत्तं ठवणा वस्सयं ॥ २॥ अस्यार्थः

प्रश्न–स्थापना आवश्यक क्या। उत्तर–
काष्ठ[१] पै लिखा चित्रोंमें[२] लिखा पोथी पै लिखा[३]
अंगुलीसे[४] लिखा गून्थलिया[५] लपेटलिया[६] पूरलिया[७]
ढेरीकरली[८] कारखैंचली[९] कौडीरखली[१०] आवश्य[११]
करनेवाले का रूप अर्थात् हाथ जोडे हुये ध्यान
लगाया हुआ ऐसा रूप उक्त भांति लिखा है
अथवा अन्यथा[१२] प्रकार स्थापन कर लिया कि
यह मेरा आवश्यकहै सो स्थापना आवश्यक २
मूल-नामठवणाणंकोवइविसेसोनामंआव कहियं
ठवणाइतरिया वा होज्जाआवकहियावाहोज्जा

अर्थ–

प्रश्न–नाम और स्थापनामें क्या भेद है॥
उत्तर–नाम जावजीव तक रहता है और स्था-

पना थोडे काल तक रहती है, वा जाव जीव कत भी ॥

सेकिंतं दव्वावस्सयं २ दुविहा पणत्ता, तंजहा, आगमोय,नो आगमोय २ सेकिंतं, आगमउ, दव्वावस्सय२ जस्सणं आवस्सयति पयंसिरिक यं जावनो अणुप्पेहाए कम्हा अणुवउगो दव्व मिति कट्टु ॥

अस्यार्थः ॥

प्रश्न-द्रव्य आवश्यक क्या । उत्तर-द्रव्य आवश्यकके २ भेद यथा षष्ट अध्ययन आवश्यक सूत्र १ आवश्यक के पढ़ने वालाआदि२ प्रश्न-आगम द्रव्य आवश्यक क्या । उत्तर-आवश्यक सूत्रके पदादिकका यथाविधि सीखना पढ़ना परंतु विना उपयोग क्योंकि विना उपयोग द्रव्यही है। इति ।

इस द्रव्य आवश्यकके ऊपर ७ नय उतारीं हैं जिसमें तीन सत्य नय कहीं हैं यथा सूत्र। तिण्ह सद्दनयाणं जाणए अणुव उत्ते अवत्थु।

अर्थ–तीन सत्य नय अर्थात् सात नय, यथा श्लोक

नैगमः संग्रहश्चैव व्यवहार ऋजुसूत्रकौ।
शब्दःसमभिरूढ़श्च एव भूतिनयोऽमी। १

अर्थ–१ नैगम नय २ संग्रह नय ३ व्यवहार नय ४ ऋजु सूत्रनय ५ शब्दनय ६ समभिरूढ़ नय ७ एव भूत नय इन सात नयोंमें से पहिली ४ नय द्रव्य अर्थको प्रमाण करती हैं और पिछली ३ सत्य नय यथार्थ अर्थ को (वस्तुत्वको) प्रमाण करती हैं अर्थात् वस्तु के गुण विना वस्तुको अवस्तु प्रकट करती हैं॥

नो आगम द्रव्य आवश्यकके भेदोंमें जाणग शरीर भविय शरीर कहे हैं। ३।

भाव आवश्यकमें उपयोग सहित आवश्यक का करना कहा है। ४

इन उक्त निक्षेपोंका सूत्रमें सविस्तार कथन है॥

अब इस ही पूर्वोक्त अर्थको दृष्टान्त सहित लिखते हैं।

१ नाम निक्षेप यथा किसी गूजर ने अपने पुत्रका नाम इन्द्र रख लिया तो वह नाम इन्द्र है उसमें इन्द्रका नामही निक्षेप करा है अर्थात् इन्द्रका नाम उसमें रख दिया है परंतु वह इंद्र नहीं है इन्द्र तो वही है जो सुधर्मा सभामें ३२ लाख विमानोंका पति सिंहासन स्थित है उस में गुण निष्पन्न भाव सहित नाम इन्द्रपनघटे

है और उसहीमें पर्याय अर्थ भी घटे ह यथा इन्द्रपुरन्दर,वज्रधर सहस्रानन,पाकशासन परंतु उस गूजरके बेटे ग्वालिये में नहीं घटे अर्थ शून्य होनेसे वह तो मोहगयेली माताने इन्द्र नाम कल्पना करली है तथा किसीने, तोते का तथा कुत्तेका नाम ऐसे जीवका नाम इन्द्र रख लिया तथा अजीव काष्ठ स्थम्भादिकका नाम इन्द्र रख लिया वस यह नामनिक्षेप गुण और आकारसे रहित नाम होता है कार्य साधक नहीं होता ॥

२ स्थापना निक्षेप यथा काष्ठ पीतल पाषाणादिकी इन्द्रकी मूर्ति बनाके स्थापना करली कि यह मेरा इन्द्र है फिर उसको बंदे पूजे उस से धन पुत्र आदिक मांगे मेला महोत्सव करें परंतु वह जड़ कुछ जाने नहीं ताते शून्य है

अज्ञानता के कारण उसे इन्द्र मान लेते हैं पर
न्तु वह इन्द्र नहीं अर्थात् कार्य साधक नहीं २
तातें यह दोनों निक्षेपे अवस्तु हैं कल्पना
रूप हैं क्योंकि इनमेंवस्तुका न द्रव्य है न भाव
है और इन दोनों नाम और स्थापना निक्षेपों
में इतना ही विशेष है कि नाम निक्षेप तो या
वत् कालतक रहता है और स्थापनायावत्काल
तक भी रहे अथवा इतरिये (थोडे) काल तक
रहे क्योंकि मूर्ति फूट जाय टूट जाय अथवा
उसको किसी और की थापना मान ले कि यह
मेराइन्द्र नहीं यहतो मेरा रामचन्द्र है वा गोपी
चन्द्र है, वा और देव है इन दोनों निक्षेपों को
साननयोंमेंसे ३ सत्यनयवालों ने अवस्तु माना
है क्योंकि अनुयोगद्वार सूत्रमें द्रव्य और भाव
निक्षेपों पर तो सात२ नय उतारीहैं परन्तु नाम

और थापना पै नहीं उतारी है इत्यर्थः ।

३ द्रव्य निक्षेप, द्रव्य इन्द्र जिससे इन्द्र वन सके परन्तु सूत्रमें द्रव्य दो प्रकारका कहा है एक तो अतीत इन्द्रका द्रव्य अर्थात् जाणग शरीर दूसरा अनागत इन्द्र का द्रव्य अर्थात् भविय शरीर सो अनागत द्रव्य इन्द्र जो उत् पात शय्यामें इन्द्र होनेके पुण्य बांधके देवता पैदा हुआ और जब तक उसे इन्द्र पद नहीं मिला तबतक वह भविय शरीर द्रव्य इन्द्र है क्योंकि वह वर्तमान कालमें इन्द्रपनका कार्य साधक नहीं परन्तु अनागत काल (आगेको) इन्द्रपनका कार्य साधक होगा ॥

और जो अतीत द्रव्य इन्द्र सो इन्द्रका काल करे पीछे मृत शरीर जवतक पड़ा रहे तब तक वह जाणग शरीर द्रव्य इन्द्र है क्योंकि वह

अतीतकालमें इन्द्रपनका कार्य साधक था प-रन्तु वर्तमान में कार्य साधक नहीं यथा इदं घृतकुम्भम् अर्थात् कुम्भमेंसे घृत तो निकाल लिया फिर भी उसे घृत कुम्भही कहते हैं पर-न्तु उससे घी की प्राप्ति नहीं । इत्यर्थः ३

४ भाव निक्षेप, जो पूर्वोक्त इन्द्र पदवी सहित वर्तमानकालमें इन्द्रपनके सकल कार्यका सा-धक इत्यादिक ॥ ४

अथ पदार्थका नाम १ और नाम निक्षेप २ स्थापना ३ और स्थापना निक्षेप ४ द्रव्य ५ और द्रव्य निक्षेप ६ भाव ७ और भाव निक्षेप ८ इन का न्यारा २ स्वरूप दृष्टान्त सहित लिखते हैं ॥

(१) नाम, यथा एक, द्रव्य, मिशरी नाम से है अर्थात् वह जो मिशरी नाम, है सो सार्थक

है क्योंकि यह नाम वस्तुत्व में संमिलित है अर्थात् वस्तुके गुणसे मेल रखता है यथा कोई पुरुष किसी पुरुषको कहे कि मिशरी लाओ तो वह मिशरी ही लावेगा अपितु ईंट पत्थर नहीं लावेगा इत्यर्थः ॥

(१) नाम निक्षेप, यथा किसीने कन्या का नाम मिशरी रख दिया सो नाम निक्षेप है। क्योंकि वह मिशरीवाला काम नहीं दे सक्ती है अर्थात् मिशरीकी तरह भक्षणकरनेमें अथवा शर्वत करके पीनेमें नहीं आती है ताते नाम निक्षेप निरर्थक है।

२ स्थापना, यथा मिशरीके कूजेका आकार जिसको देखके पहिचानाजाय कि यह क्या है मिशरीका कूजा सो स्थापना मिशरी पूर्वोक्त सार्थक है ॥

(२) स्थापना निक्षेप यथा किसीने मिट्टीका तथा कागजका मिशरीके कूजेका आकार बना लिया सो स्थापना निक्षेप है क्योंकि वह मिट्टीका कूजा पूर्वोक्त मिशरीवाली आशा पूण नहीं करसक्ता है ताते स्थापना निक्षेपनिरर्थकहै

(३) द्रव्य, यथा मिशरीका द्रव्य खांड आदिक जिससे मिशरी बने सो द्रव्य मिशरी सार्थक है ॥

(३) द्रव्य निक्षेप यथा मिशरी ढालने के मिट्टीके कूजे जिनको चासनी भरने से पहिले और मिशरी निकालनेकेपीछेभी मिशरी के कूजे कहते हैं सो द्रव्य निक्षेप यथा पूर्वोक्त इदंमधु कुम्भं इति वचनात् परन्तु यह द्रव्य निक्षेप वर्तमानमें मिशरीकादातानहीं ताते निरर्थक है

(४) भाव, यथा मिशरी का मीठापन तथा

है क्योंकि यह नाम वस्तुत्व में संमिलित है अर्थात् वस्तुके गुणसे मेल रखता है यथा कोई पुरुष किसी पुरुषको कहे कि मिशरी लाओ तो वह मिशरी ही लावेगा अपितु ईंट पत्थर नहीं लावेगा इत्यर्थः ॥

(१) नाम निक्षेप, यथा किसीने कन्या का नाम मिशरी रख दिया सो नाम निक्षेप है। क्योंकि वह मिशरीवाला काम नहीं दे सक्ती है अर्थात् मिशरीकी तरह भक्षणकरनेमें अथवा शर्वत करके पीनेमें नहीं आती है ताते नाम निक्षेप निरर्थक है।

२ स्थापना, यथा मिशरीके कूजेका आकार जिसको देखके पहिचानाजाय कि यह क्या है मिशरीका कूजा सो स्थापना मिशरी पूर्वोक्त सार्थक है ॥

(२) स्थापना निक्षेप यथा किसीने मिट्टीका तथा कागजका मिशरीके कूजेका आकार वना लिया सो स्थापना निक्षेप है क्योंकि वह मिट्टीका कूजा पूर्वोक्त मिशरीवाली आशा पूण नहीं करसक्ता है ताते स्थापना निक्षेपनिरर्थकहै

(३) द्रव्य, यथा मिशरीका द्रव्य खांड आदिक जिससे मिशरी वने सो द्रव्य मिशरी सार्थक है ॥

(३) द्रव्य निक्षेप यथा मिशरी ढालने के मिट्टीके कूजे जिनको चासनी भरने से पहिले और मिशरी निकालनेके पीछेभी मिशरी के कूजे कहते हैं सो द्रव्य निक्षेप यथा पूर्वोक्त इदंमधु कुम्भं इति वचनात् परन्तु यह द्रव्य निक्षेप वर्तमानमें मिशरीकादातानहीं ताते निरर्थक है

(४) भाव, यथा मिशरी का मीठापन तथा

शीत स्निग्ध (शरदतर) स्वभाव (तासीर) सो भाव कार्य साधक है ॥

(४) भाव निक्षेप, यथा पूर्वोक्त मिट्टीके कूजे में मिश्री भरी हुई सो भाव निक्षेप, यह भी कार्य साधक है,अब इसी तरह तीर्थंकर देवजी के नामादि चार और चारनिक्षेपों का स्वरूप लिखते हैं ॥

(१) नाम, यथा नाभिराजा कुलचन्दनन्दन मरुदेवीराणी के अंगजात क्षत्री कुल आधार सत्यवादि दृढ़ धर्मी इत्यादि सद्गुण सहित ऋषभदेव सो नाम ऋषभदेव कार्य साधक है क्योंकि यह नाम पूर्वोक्त गुणोंसे पैदा होता है यथा सूत्र गुण निष्पन्नं नामधेयं करेइ(कुर्वंति) तथाव्युत्पत्तिसे जो नाम होताहै सो गुणसहित

होता है इस नामका लेना सो गुणों के हि स-
मान है इसके उदाहरण आगे लिखेंगे॥

(१) नाम निक्षेप यथा किसी सामान्य पुरुष
का नाम तथा पूर्वोक्त जीव पशु पक्षी आदिक
का तथा अजीव स्थम्भादिका नाम ऋषभदेव
रख दिया सो नामनिक्षेप है यह नाम निक्षेप
ऋषभदेवजीवाले गुण और रूप करके रहित
है ताते निरर्थक है॥

(२) स्थापना, यथा ऋषभदेवजीका औदा-
रिक शरीर स्वर्णवर्ण.सम चौरस संस्थान वृषभ
लक्षणादि१००८लक्षण सहित पद्मासन वैराग्य
मुद्रा जिससे पहिचाने जायें कि यह ऋषभ
देव भगवान् हैं सो स्थापना ऋषभदेव कार्य
साधक है॥

(२) स्थापना निक्षेप यथा पाषाणादि का

बिम्ब ऋषभदेवजीके पद्मासनादिके आकारसे स्थापन कर लिया तथा कागज आदिक पर चित्रोंमें लिख लिया सो स्थापना निक्षेप यह ऋषभदेवजीवाले गुण करके रहित जड़ पदार्थ है ताते निरर्थक है ॥

(२) द्रव्य, यथा भाव गुण सहित पूर्वोक्त शरीर अर्थात् संयम आदि केवल ज्ञान पर्यन्त गुण सहित शरीर सो द्रव्य ऋषभदेव कार्य साधक है ॥

(३) द्रव्य निक्षेप यथा पूर्वोक्तजाणग शरीर भविय शरीर अर्थात् अतीत अनागत काल में भाव गुण सहित वर्तमानकालमें भावगुणरहित शरीर अर्थात् ऋषभदेवजीके निर्वाण हुए पीछे यावत् काल शरीरको दाह नहीं किया तावत् काल जो मृतक शरीररहा था सो द्रव्यनिक्षेप

है परन्तु वह शरीर ऋषभदेवजीवाले गुणकरके रहित कार्य साधक नहीं ताते निरर्थक है ॥

यथा :— दोहा

जिनपद नहीं शरीर में, जिनपद चेतन मांह
जिन वर्णनकछु और है,यह जिनवर्णननांह॥१।

(४) भाव, यथा ऋषभदेवजी भगवान् ऐसे नाम कर्मवाला चेतन चतुष्टय गुण प्रकाशरूप आत्मा सो भाव ऋषभदेव कार्य साधक है ॥

(४) भाव निक्षेप यथा शरीर स्थित पूर्वोक्त चतुष्टय गुण सहित आत्मा सो भाव निक्षेप है परन्तु यह भी कार्यसाधक है यथा घृतसहित कुम्भ घृत कुम्भ इत्यर्थः ॥

(१) प्रश्न—जड़ पूजक, हमारे आत्माराम आनन्दविजय संवेगीकृत सम्यक्त्वशल्योद्धार देशीभाषाका सम्वत् १९६० का छपा हुआ पृष्ठ

७८ पंक्ति २२ में लिखा है कि जिस वस्तु में अधिक निक्षेप नहीं जान सके तो उस वस्तु में चार निक्षेपे तो अवश्य करे अब विचारना चाहिये कि शास्त्रकारने तो वस्तु में नाम निक्षेप कहा है और जेठा मूढ़मति लिखता है कि जो वस्तुका नाम है सो नाम निक्षेप नहीं ॥

उत्तर-चेतन पूजक, हमारे पूर्वोक्त लिखे हुये सूत्र और अर्थ से विचारो कि जेठमलमूढ़मति है कि सम्यक्त्वशल्य द्धारके बनानेवाला मूढ़मति है क्योंकि सूत्रमें तो लिखा है कि जीव अजीवका नाम आवश्यक निक्षेप करे सो नाम निक्षेप अर्थात् नाम आवश्यक है, कि आवश्यक ही में आवश्यक निक्षेप कर धरे ॥

यदि वस्तुत्व में ही वस्तु के निक्षेपे तुम्हारे पूर्वोक्त कहे प्रमाणसे माने जायें तदपि तुम्हारे

ही माने हुए मत को बाधक होवेंगे, क्योंकि भगवान् में ही भगवान् का नाम निक्षेप मान लिया भगवान्में ही भगवान्का स्थापना निक्षेप मानलिया तो फिर पत्थरका बिम्ब मूर्ति अलग क्यों बनवाते हो ॥

द्वितीय नाम निक्षेप तो भला कोई मान भी ले कि भगवान्में भगवान्का नाम निक्षेप किया कि महावीर परंतु भगवान्में भगवान्का स्थापना निक्षेप जो पत्थर की मूर्ति बिम्ब का तुम भगवान्का स्थापना निक्षेप मानते हो तो क्या उस मूर्तिको भगवान्के कंठद्वारा पेटमें क्षेपते हो अपितु नहीं वस्तुत्वका स्थापना निक्षेप वस्तुमें कभीनहींक्षेप किया जाता है ताते तुम्हारा उक्त लेख मिथ्याहै ऐसेही द्रव्य भाव निक्षेपों में भी पूर्वोक्त भेद है ॥

पूर्वपक्षी–अजी सूत्रकी गाथा जोलिखी है।

उत्तर–लो गाथा में लिखाहै सो गाथा और गाथा का अर्थ लिख दिखाती हुं तो आप को प्रगट हो जाएगा॥

जत्थय २ जं२ जाणिज्जो निक्खेवं निक्खेवे निरविसेसं जत्थवियन जाणिज्जा चउक्कय २ निक्खेवे तत्थ॥ १॥ अस्यार्थः॥

जिस २ पदार्थके विषयमें जो २ निक्षेपे जाने सो २ निर्विशष निक्षेपे जिस विषय में ज्यादा न जाने तिस विषयमें चार निक्षेपे करे अर्थात् वस्तुके स्वरूपके समझनेको चारनिक्षेपनो करे नाम करके समझो स्थापना (नकसा) नकल करके समझो और ऐसेही पूर्वोक्त द्रव्य भाव निक्षेपकरके समझो परन्तु इस गाथामें ऐसा कहां लिखा है कि चारों निक्षेपे वस्तुत्व में ही

मिलाने वा चारों निक्षेपे वन्दनीय है, ऐसा तो कहा नहीं परन्तु पक्षसे हठसे यथार्थपर निगाह नहीं जमती मनमाने अर्थ पर दृष्टि पड़ती है, यथा हठवादियोंकी मण्डली में तत्त्वका विचार कहां मनमानी कहैं चाहे झूठ चाहे सच है।

पूर्वपक्षी–सम्यक्त्वशल्योद्धारके बनाने वाला तो संस्कृत पढा हुआ था कहिये उस ने यथार्थ अर्थ कैसे नहीं किया होगा ॥

उत्तर पक्षी–बस केवल संस्कृत बोलनेके ही गरूरमें गलते हैं परन्तु आत्माराम तो विचारा संस्कृत पढ़ा हुआ था ही नहीं, क्योंकि सवत् १९३७ में हमारा चातुर्मास लाहौर में था वहां ठाकुरदास भावड़ा गुजरांवालनगर वाले ने आत्माराम और दयानन्दसरस्वती के पत्रिका द्वारा प्रश्नोत्तर होते थे उनमें से कई पत्रिका

पूर्वपक्षी–अजी सूत्रकी गाथा जोलिखी है।

उत्तर–लो गाथा में लिखाहै सो गाथा और गाथा का अर्थ लिख दिखाती हुं तो आप को प्रगट हो जाएगा॥

जत्थय २ जं२ जाणिज्जो निक्खेवं निक्खेवे निरविसेसं जत्थवियन जाणिज्जा चउक्कय २ निक्खेवे तत्थ ॥ १ ॥ अस्यार्थः ॥

जिस २ पदार्थके विषयमें जो २ निक्षेपे जाने सो २ निर्विशेष निक्षेपे जिस विषय में ज्यादा न जाने तिस विषयमें चार निक्षेपे करे अर्थात् वस्तुके स्वरूपके समझनेको चारनिक्षेपनो करे नाम करके समझो स्थापना (नकसा) नकल करके समझो और ऐसेही पूर्वोक्त द्रव्य भाव निक्षेपकरके समझो परन्तु इस गाथामें ऐसा कहां लिखा है कि चारों निक्षेपे वस्तुत्व में ही

करणी बना फिरता है स्त्रीलिंग शब्दको पुल्लिंग में लिखता है क्योंकि यहां वादिनी लिखना चाहिये था इत्यादि ।

हां संस्कृत आदि विद्यायोंका पढ़ना पढ़ाना तो हमभी बहुत अच्छा समझते हैं जिससे बने यथारीति पढ़ो परन्तु संस्कृतके पढ़नेसे मोक्ष होता है और नहीं पढ़नेसे नहीं ऐसा नहीं मानते हैं यदि संस्कृत पढ़नेसे ही मुक्ति होजाय तो संस्कृतके पढ़े हुये तो ईसाई पादरी और वैष्णव ब्राह्मण आदिक बहुत होते हैं क्या सबको मुक्ति मिल जायेगी यदि केवल संस्कृतके पढ़नेसेही सत्य धर्मकी परीक्षा हो जाय तो वेदों के बनानेवालोंको आत्मारामजी अपने बनाये अज्ञान तिमर भास्कर पुस्तक संवत् १९४४ का छपा पृष्ट १५५ पंक्ति ९।१० में अज्ञानी निर्दय

हमको भी दिखाईथीं कि देखो आत्मारामजी कैसे प्रश्नोत्तर करते हैं तो उनमें एक चिट्ठी दयानन्दवालीमें लिखा हुआ था कि आत्माराम जीको भाषाभी लिखनीनहींआती है जो मूर्खको मूर्ष लिखता है और इन की बनाई पुस्तकों की अशुद्धियोंका हाल धनविजय संवेगी अपनी बनाई चतुर्थस्तुतिनिर्णयशंकोद्धार संवत्१९४६ में अहमदावाद के छपेमें लिखचुके हैं।

हां एक दो चेला चांटा पढ़वा लिया होगा परंतु पंजाबी पीतांबरी तो बहुलतासे यूं कहते हैं कि बल्लभविजय पुजेरा साधु संस्कृत बहुत पढ़ा हुआ है परन्तु बल्लभ अपनीकृत गप्पदीपिका शमीर नाम पोथी संवत् १९४८ की छपी पृष्ठ १४ में पंक्ति १४ मी लिखता है कि लिखनेवाली महामृषावादी सिद्ध हुई–यह देखो वैया

अणास्रवे तेंसुद्ध
१ अस्यार्थः।
कनेवाले सदा
त्र, पाप आवने
ाति सम्वर के
ाती (कहते हैं)
कारी अत्यु-
ाले पुरुष को
ु व्याकरण

माने जांय
कृत नहीं
गोंके अनु-
थ्या

मांसाहारी क्यों लिखते हैं क्या वे वेदोंके कर्ता संस्कृत नहीं पढ़े थे हे भ्रातः ! पढ़ना पढ़ाना कुछ और होता है और मत मतांतरोंके रहस्यका समझना कुछ और होता है अर्थात् पढ़ना तो ज्ञानावर्णी कर्मके क्षयोपस्मसे होताहै और मतकी शुद्धि मोहनी कर्म के क्षयोपस्म से अर्थात्सम्यत्तव की शुद्धताके प्रयोगसेहोतीहै ॥

प्रश्न–अजी यों कहते हैं कि प्रश्न व्याकरण के ७में अध्ययनमें लिखा है कि तद्धितसमास विभक्ति लिंग कालादि पढे विना वचन सत्य नहीं होता। उत्तर–यह तुम्हारा कहना मिथ्या है क्योंकि उक्तसूत्रमें तो पूर्वोक्त वचनकीशुद्धि कही है यों तो नहीं कहा कि संस्कृत बोलेविना सत्य व्रतही नहीं होता है सूत्र सूयगडांगजी में तो ऐसा लिखा है ॥

आयगुत्तेसयादंतें छिन्नसोयअणासवे तेंसुद्ध धम्ममक्खाति पडिपुन्नमणेलिसं १ अस्यार्थः।

गुप्तात्मा मनको विषयोंमे रोकनेवाले सदा इन्द्रियोंको दमनेवाले छेदे हैं श्रोत्र,पाप आवने के द्वारे जिनोंने अणाश्रवी अर्थात् सम्वर के धारकते(सो)पुरुष शुद्धधर्म आख्याती(कहते हैं) प्रतिपूर्ण अनीदृश अर्थात् आश्चर्यकारी अत्यु-त्तम,अब देखिये इसमें उक्त गुणवाले पुरुष को शुद्धधर्म कहनेवाला कहा है परन्तु व्याकरण ही पढे को सत्यवादी नहीं कहा ॥

यदि तुम्हारे पूर्वोक्त कहे प्रमाण माने जांय तो तुम्हारे बूटेराय जी आदिक संस्कृत नहीं पढे थे तथा पीतांबरी और पीतांबरीयोंके अनु-यायी जो संस्कृत नहीं पढे, हैं वे सब मिथ्या वादी हैं और असंयमी हैं उन की बात पर

कभी निश्चय (इतबार) करना नहीं चाहिये। अरे भोले भाइयो यथा पूर्वोक्त मिथ्यातियों के बनाये हुये संस्कृतमयी ग्रंथ हैं उनमें शब्द तो शुद्ध हैं परन्तु उन के वचन तो सत्य नहीं क्योंकि शब्दशुद्धि कुछ और होती है अर्थात् लिखने पढ़नेकी लयाकत और सत्य बोलना कुछ और होताहै यथा कचहरीमें दो गवाह गुजरे एक तो इलमदार अर्बी फार्सी संस्कृत पढ़ा हुआ था बकायदे (विभक्तिलिंग भूतभविष्यतादिकालसहित) बोलता था परन्तु इजहार झूठे गुजारता था और दूसरा बेचाराकुछ नहीं पढ़ा था सूधी देशी भाषा बोलता था परन्तु सत्य २ कहता था अब कहोजी सभामें आदर किसको होगा और दंड किसको अपितु चाहे पढ़ा हो न पढ़ा हो जो सत्य बोलेगा उसी की

मुक्ति होगी क्योंकि हम देखते हैं कि कई लोग ऐसे हैं कि संस्कृतादि अनेक प्रकार की विद्या पढे हुये है परन्तु,अभक्ष्य, भक्षणादि अगम्य-गमनादि अनेक कुकर्म करते हैं तो क्या उन की शुभगति होगी अपितु नहीं दुर्गति होगी यदि शुभ धर्म करेंगे तो तरेंगे और जो कई अनपढ़ नर नारी धर्म करते हैं और सुशील हैं दानादि परोपकारकरतेहैं तो क्याउनकी दुर्गति होगी अपितु नहीं अवश्य शुभगति होगी इत्यर्थः यथा राजनीतौ ॥

पठकः पाठकश्चैव,येचान्ये शास्त्रचिंतकाः ।
सर्वेव्यसनिनो मूर्खा, यःक्रियावान् स पण्डितः ॥१॥ अस्यार्थः ॥

संस्कृतादि विद्याके पढ़ने वाले पढ़ाने वाले येच अन्यमत मतांतरोंके शास्त्रोंके चिंतक सर्व

नहीं ताते कामराग की उपमा वैराग्य पर उ-
तारते हो विन सतगुरु हृदय के नयन कौन
खोलेअरे भोले स्त्रीकी मूर्तियोंकोदेखकेतोसबी
कामियोंका काम जागता होगा परन्तु भगवान्
की मूर्तियों को देखके तुम सरीखे श्रद्धालुओं
में से किस२ को वैराग्य हुआ, सो बताओ? हे
भाई! काम तो उदय भाव (परगुण है) उसका
कारणभी स्त्री वा स्त्रीकी मूर्तिआदिभी परगुण
हीहै और वैराग्यनिजगुण है उसका कारणभी
ज्ञानादि निजगुण ही है, इस का विस्तार मेरी
बनाई हुई ज्ञान दीपिका नाम पुस्तक में इसी
प्रश्नके उत्तर में लिखा गया है अथवा किसी
को किसी प्रकार मूर्तियें देखनेसे वैराग्य आभी
जायतो क्या वह वैराग्य आनेसे पूर्वोक्त मूर्तियें
आदिक वंदनीय होजायेंगी, जैसे समुद्र पाली

को चोरके बन्धनों को देखके वैराग्य हुआ और प्रत्येक बुद्धियोंको बैल वृक्षादि देखनेसे वैराग्य हुआ तो क्या वे चोर बैल बृक्षादि वंदनीय हो गये अपितु नहीं ॥

पूर्वपक्षी–आपने कहा सो ठीक है परन्तु वस्तुका स्वरूप सुनने की अपेक्षा वस्तुका आकार देखने से ज्यादा और जल्दी समझमें आजाता है, जैसे मेरु (पर्वत) लवण समुद्र भद्रशाल वन गंगा नदी इत्यादिकोंके लंवाई चौड़ाई ऊंचाई आदिक वर्णन सुनके तो कम समझ बैठती है और उनके मांडले (नकसे) देख के जल्दी समझ आजाती है ऐसे ही भगवान् की तारीफ सुननेकी अपेक्षा भगवान् की मूर्ति देखनेसे जल्दी स्वरूप की समझ पड़तीहै।

उत्तर पक्षी–हांहां सुनने की, अपेक्षा (निस

वत) आकार (नकसा) देखनेसे ज्यादा और जल्दी समझ आती है यह तो हमभी मानते हैं परन्तु उस आकार (नकसे) को वंदना नमस्कार करनी यह मतवाल तुम्हें किसने पीलादी ।

पूर्वपक्षी–जो चीज जिसलायक होगी उस का आकार (नकसा) भी वैसे ही माना जाय गा अर्थात् जो वन्दने योग्य होंगे उनका आकार (मूर्ति) भी वन्दी जायगी ॥

उत्तरपक्षी–यह तुम्हारा कहना एकांत मूर्खताई का सूचक है, क्योंकि तुम जो कहते हो जो चीज जिस लायक हो उस की मूर्ति भी उसी तरह से ही मानी जायगी, अर्थात् जो वन्दने योग्य होगें, उनकी मूर्ति भी वन्दी जायगी, तो क्या जो चीज खाने के योग्य होगी उस की मूर्ति भी खाई जायगी जो असवारी

के योग्य होगी, उस की मूर्ति पै भी असवारी होगी जैसे आमका फल खाने योग्य होता है. और उसकी मूर्ति अर्थात् किसी ने मिट्टी का काष्ठका, कागज का वरूद्का आम बना लिया तो क्या वह भी खाने योग्य होगा किसी ने मिट्टी का काष्ठका घोड़ा बनाया तो क्या उस पै असवारी भी होगी अथवा पर्वत का नकसा देखें तो क्या उसकी चढ़ाई भी चढें. समुद्र का नकसा देखें तो क्या उसमें जहाजभी छोड़े वा नदी का नकसा देखें तो क्या गोते भी लगावें अपितु नहीं ऐसेही भगवान् की मूर्ति कोदेखें तो क्यानमस्कार भी करें अपितु नहीं असली की तरह नकल के साथ वरताव कभी नहीं होता है,असल और नकलका ज्ञान तो पशु पक्षी भी रखते हैं ॥ यथा सवैया :—

झटही प्रवीन नर पटके वनाये कीर
ताहकीर देखकर विल्ली हुन मारे है
कागज के कोर २ ठौर२ नानारंग ताह
फुल देख मधु कर दुर हीते छारे है
चित्रामका चीता देख श्वान तासौं डरे नाह
वनावटका अंडा ताह पक्षी हुन पारे है
असल हू नकल को जाने पशु पखी
राम मूढ नर जाने नाह नकल कैसे तारे है,

पूर्वपक्षी-हां ठीकहै, असलकीजगह नकल काम नहीं देसक्ती परन्तु बड़ों की अर्थात् भगवन्तों की मूर्ति का अदब तो करना चाहिये ॥

उत्तर पक्षी-हमने तो अपने वड़ों की मूर्ति का अदब करते हुये किसीको देखा नहीं यथा अपने बाप की बावे की मूर्तियें बनाके पूज रहे हैं और उसको न्हुं (बेटे की बहु) उस स्व

सर की मूर्ति से घूंगट पल्ला करती है इत्यादि हां किसी ने कुल रूढी करके वा मोह के वस होकर वा क्रोध करके वा भूल करके कल्पना करली तो वह उसकी अज्ञान अवस्था है हर एककी रीति नहीं जैसे ज्ञाता सूत्र में मल्लि दिन कुमारने चित्रशालीमें मल्लि कुमारी की मूर्ति को देखके लज्जा पाई और अदब उठाया और चित्रकारपै क्रोध किया ऐसे लिखा है तो उस कुमारकी भूलथीक्योंकिहर एकने मूर्तिको देख के ऐसे नहीं कियाक्योंकि यह शास्त्रोक्त क्रिया नहीं है शास्त्रोक्त क्रिया तो वह होती है कि जिस का भगवंत ने उपदेश किया हो कि यह क्रिया इसविधि से ऐसे करनी योग्य है नतु शास्त्रोंमें तो संबंधार्थमें रूढिभी दिखाइहै, मन कल्पना भी दिखाई है और यज्ञभी यात्रा

भी चोरी भी वेश्या के शृंगारादि की रचना इत्यादि अनेक शुभाशुभ व्यवहार दिखाये हैं क्या वे सब करने योग्य हो जायेंगे, जैसे राय प्रश्नी मे देवोंका जीत व्यवहार (कुलरूढि) कुल धर्म्म नाग पडिमा (नाग आदिकों की मूर्तियों) का पूजन ॥

२ पद्मपुराण (रामचरित्र) में वज्रकरण ने अंगूठीमेंमूर्ति कराई ॥

३ विपाकसूत्रमें अंबर यक्षकीयात्राअभंगसेन चोरकी चोरीका करना पुरोहितने यज्ञमेंमनुष्यों का होम कराया राज की जयके लिये इत्यादि परन्तु यह सब उच्च नीच कर्म मिथ्यात्वादि पुण्य पाप का स्वरूप दिखाने को संबंधमेंकथन आजाते हैं, यह नहीं जानना कि सूत्र में कहे हैं तो करने योग्य होगये, क्योंकि यह पूर्वोक्त

उपदेशमें नहीं हैं कि ऐसे करो उपदेशतो सूत्रों में ऐसा होताहै कि हिंसा मिथ्यादि त्यागने के योग्य हैं इनके त्यागने से ही तुम्हारा कल्याण होगा और दया सत्यादि ग्रहण करने के योग्य हैं इनके ग्रहण करने से कर्म क्षय होंगे और कर्म क्षय होने से मोक्ष होगा इत्यादि ॥

(४) पूर्वपक्षी–यह तो सब बातें ठीक हैं परंतु हमारी समझमें तो जो वंदने नमस्कार करने के योग्य है उस मूर्तिको भी नमस्कार करी ही जायगी ।

उत्तर पक्षी–यह भूल की बात है क्योंकि वंदना करने योग्यको तो वंदना करी जायगी। परंतु उसकी मूर्ति को पूर्वोक्त कारणोंसे कोई विद्वान् नमस्कार नहीं करता है यथा नगरका राजा कहींसे आवे वा कहीं जाय तो उसकी

पेशवाइमें रईस लोगजाय और नमस्कार करें भेट चढावें रोशनी करे मुकदमें पेशकरें परंतु राजाकी मूर्ति को लावें तो पूर्वोक्त काम कौन करता है मुकदमें नकलें कौन उस मूर्तिके आगे पेश करताहै यदि करे तो मूर्ख कहावे।

पूर्व पक्षी–मुकदमोंकीबातें तो न्यारीहै हमतो ऐसे मानतेहैं कि जैसे मित्रकी मूर्तिकोदेखकर राग (प्रेम जागता है) ऐसेही भगवान् की मूर्ति को देखके भक्ति प्रेम जागता है।

उत्तर पक्षी–हां २ हम भीमानते हैं की मित्र की मूर्तिको देखके प्रेम जागता है परंतु यह तो मोह कर्म के रंग हैं यदि उसी मित्र से लड़ पडे तो उसी मूर्ति को देखके क्रोध जागता है हे भाई यह तो पूर्वोक्त परगुणका कारण राग द्वेष का पेटा है समझनेकी बात तो यूं है कि

मित्र आवे तो उसके लिये पलंग विछादे मीठा भात करके थाल लगाके अगाड़ी रखदेकि लो जीवों और वहुत खातिर से पेश आवे यदि मित्र की मूर्ति बनी हुई आवे तो उसे देखकर खुशी तो मोह के प्रयोग से भले ही होजाय परंतु पलंग तो मूर्ति के लिये दौड़के न विछाये गा, न मीठे भात बनवाके थाल आगाड़ी धरे गा यदि धरे गा तो उस को लोग मूर्ख कहेंगे और उपहास करेंगे ऐसेही भगवान् की मूर्ति को देखके कोई खुश हो जाय तो हो जाय परन्तु नमस्कार कौन विद्वान् करेगा, और दाल चावल लौंग इलाची अंगूर नारंगी कौन विद्वान् खाने को देगा अर्थात् चढ़ावेगा सिवा बाल अज्ञानियों के। यथा :–

गीत चाल लूचेकी, कूक पाडे सुनता नाही

राग रंग क्या आखों सेती देखे नाहीं । नाच नृत्य क्या ताक थइया ताक थइया ताकथइया क्याइकेन्द्री आगे पंचेन्द्री नाचे यह तमासा क्या १ नासिकाके स्वर चाले नाहीं धूप दीप क्या मुखमें जिव्हा हाले नाहीं भोगपान क्या ताक थइया २ परम त्यागी परम बैरागी हार शृंगार क्या आगमचारी पवन विहारी ताले जिंदे क्या ताकथइया३साधु श्रावक पूजी नाही देवरीस क्या जीत विहारी कुल आचारी धर्म्मरीत क्या ताक ४ इति ॥

(५) पूर्व पक्षी–तुम मूर्तिको किस कारण नहीं मानते हो ॥

उत्तर पक्षी–लो भला शिरोशिर पड़े खड़का किधर होय मूर्ति को तो हम मूर्ति मानते हैं परंतु मूर्ति का पूजन नहीं मानते हैं पूर्वोक्त

दृष्टांतोंसे कार्य साधक न होनेसे यथा दृष्टांत एक मिथ्यामति शाहूकार के घर सम्यक्ती की बेटी व्याही आई वह कुछक नौतत्त्व का ज्ञान पढ़ी हुई पंडिता थी और सामायिक आदि नियमों में भी प्रवीणथी तो उसकी सास उसे देवघर (मंदिर) को लेचली तब वहां देहरे के द्वारे पाषाण के शेर बने हुयेथे उन्हे देखके वह बहू सासुके समझानेके लिये मूर्छा होगिरपड़ी तब सासुने जल्दी से उठाके छातीसे लगाली और कहा कि तू क्यों कांपती है बहु घबराती हुई बोली यह शेर खालेंगे तब सासु बोली ओ मूर्खे यह तो पत्थरहै शेरका आकार किया हुया है यह नहीं खा सक्ते इनसे मत डर तब अगाड़ी चौंकमें एक पत्थरकी गौ बनी हुई पास बछा बना हुआ तब वहां दूध दोहने लगी तो सासु

ने फिर कहाकी तू मूर्खानन्दनी है पत्थरकी गौ कभी नहीं दूधकी आसापूरी करेगी, आगे इष्ट देव की मूर्ति को सासु झुक झुक सीस निवाने लगी और बहुको भी कहने लगी कि तूं भी झुक तब बहु वोली कि इसके आगेसरनिवाने से क्या होगा तब सासु बोलीदूधदेगा पूत देगा स्वर्ग देगा मुक्ति देगा तब बहु वोली यथा-

छपै, पर्वत से पाषाण फोडकर सिला जो लाये वनी गौ और सिंहतीसरे हरी पधराये। गौ जो देवे दूध सिंह जो उठकर मारे दोनों वातें सत्य होय तो हरी निस्तारे तीनों का कारण एक है फल कार्य कहे दोय दोनों वातें झुठ हैं तो एक सत्य किम होय। सासू लाजवाब हुई घर को आई फिर न गई॥

(६) पूर्वपक्षी-भला तुम मूर्ति को तो नहीं

मानते कि यह नकल है, अर्थात् रेत को खांड थाप के खाय तो क्या मूंह मीठा होय ऐसा ही पाषाण को राम मान के क्या लाभ होगा परंतु मैं पूछता हूं कि तुम नाम लेते हो भगवान् २ पुकारते हो, इस से क्या लाभ होगा अर्थात् खांड २ पुकारने से क्या मूंह मीठा हो जायगा।

उत्तरपक्षी–हम तो नाम भी तुम्हारीसी समझकी तरह नहीं मानतेहैं क्योंकि हम जानते हैं कि बिना गुणोंके जाने, बिना गुणों के याद में ग्रहें नाम लेने से कुछ लाभ नहीं यथा राम राम रटतयां बीते जन्म अनेक तोते ज्योंरटना रटी सम दम विना विवेक ? अपितु हम तो पूर्वोक्त गुणनिष्पन्न नाम अर्थात् गुणानुबंध (गुण सहित) नाम लेते हैं सो भाव में ही

दाखिल है जैसे शास्त्रों में लिखा है कि स्वाध्याय करना (पाठ करना) स्तोत्र पढ़ना सो बड़ा तप है तांते गुणियों के नाम गुण सहित लेने से (भजन करने से) महा फल होता है अर्थात् अज्ञानादि कर्मक्षय होते हैं।

और तुम लोकभी बिना गुणों के नाम को अर्थात् नाम निक्षेप को नहीं मानते हो यथा किसी झीवर का नाम महावीर है तो तुम उस के पैरों में पड़ते हो।

पूर्वपक्षी–नहीं नहीं।

उत्तरपक्षी–क्या कारण।

पूर्वपक्षी–उसमें महावीरजी वाले गुण नहीं

उत्तर पक्षी–मूर्ति में क्या गुण हैं

पूर्वपक्षी–हमारेयशोविजयजीकृतहुंडीस्तवन नाम ग्रन्थ में लिखा है कि ढीले पसत्थे भेष-

धारी साधु को नमस्कार नहीं करनी (चेला) क्यों (गुरु) संयम के गुण नहीं (चेला) तो मूर्ति में भी गुण नहीं उसे भी नमस्कार न चाहिये (गुरुजी) मूर्ति में गुण नहीं है तोऔगुण भी तो नहीं है अर्थात् भेषधारी में संयम का गुण तो है नहीं परंतु रागद्वेषादि औगुणहैं इस से वंदनीय नहीं,और मूर्ति में गुण नहीं हैं तो रागद्वेषादि औगुण भी तो नहीं है इससे वंद-नीय है, चेला चुप।

उत्तरपक्षी–चेला मूर्ख होगा जो चुपकररहा नहीं तो यूं कहता कि गुरुजी जिस वस्तुमें गुण औगुण दोनों ही नहीं वह वस्तु ही क्या हुइ वह तो अवस्तु सिद्ध हुई ताते वंदना करना कदापि योग्य नहीं।

इसीकारण गुणानुकूल नाम मानना सो

हमाराही मत है तुम नामनिक्षेप मानना किस अर्थसे कहते हो हेभाई नाम तो गुणोंमें शामल ही माना जाता है जैसे कोई पार्श्वके नाम से गाली दे तो हमे कुछ द्वेष नहीं कई पार्श्व नाम वाले फिरते हैं यदि पार्श्वजी के गुण ग्रहण करके अर्थात् तुम्हारा पार्श्व अवतार ऐसे कह के गाली दे तो द्वेष आवे कि देखो यह कैसा दुष्ट बुद्धि है जो हमारे धर्मावतारको निंदनीय वचनसे बोलता है ताते वह नाम भी भाव में ही है यथा दृष्टान्त किसी देशके राजाके बेटे का नाम इंन्द्रजीत था और एकराजाके महलों के पीछे धोबी रहता था उसके बेटेका नामभी इन्द्रजीत था एकदा समय वह धोबीका बेटा काल वस होगया तो वह धोबी विलाप करके रोने लगा कि हाय २ इन्द्रजीत हाय शेर इन्द्र

जीत इत्यादि कहके पुकारते हुये और राजा ऊपर महलोंमें सुनता हुआ परन्तु राजाने मन में कुशौन (बुरा नहीं) माना कि देखो मेरे बेटे को कैसे खोटे वचनकहके रोवे है अपितु राजा जानता है कि नामसे क्या है जिस गुण और क्रिया शरीरसे संयुक्त मेरे बेटेका नाम है वह यह नहीं ताते नाम तो गुणाकर्षणही होता है सो भाव निक्षेपमें ही है ॥

(७) पूर्व पक्षी भलाजो पोथीमें जो अक्षर लिखे होते हैं यह भी तो अक्षरोंकी स्थापनाही है इनको देखके जैसे ज्ञानकी प्राप्तिहोती है। ऐसे ही मूर्तिको देखके भी ज्ञान प्राप्त होता है

उत्तर पक्षी यह तुम्हारा कथन बड़ी भूलका है क्योंकि पोथीके अक्षरोंको देखके ज्ञान कभी नहीं होता है यदि अक्षरोंको देखके ज्ञान होता

तो तुम अपने घर के बालबच्चे स्त्री आदिक नगर देशके सब लोगोंके सन्मुख पोथीके अ- अक्षर कर दिया करो बस वे अक्षरोंको देख के,ज्ञानी होजाया करेंगे फिरपाठशाला (स्कूल) मदरसों में पढ़वानेकी क्या गर्ज रहेगी हेभोले किसी अनपढ़के आगे अक्षर लिख धरे तो वह अक्षरोंकी स्थापना (आकार) नकसा देखके ज्ञान प्राप्त कर लेगा अर्थात् सूत्र पढ़ लेगा अपितु नहीं तो फिर तुम कैसे कहते हो कि पोथीसे ही ज्ञान होता है ॥

पूर्व पक्षी हम तो यही समझरहे थे कि पोथी से ही ज्ञान होता है परन्तु तुमही बताओ कि भला ज्ञान कैसे होता है ॥

उत्तर पक्षी तुम्हारी मति तो मिथ्यात्व ने विगाड़ रक्खी है तुम्हारे क्या वस की बात है

अब मैं बताऊं जिस तरहसे ज्ञानहोता है पांच इन्द्रिय और छठा मन इनके बलसे और इनके आवरणरूप अज्ञान के क्षयोपस्म होने से मति श्रुति ज्ञानके प्रकट होनेसे अर्थात् गुरु(उस्ताद) के शब्द श्रोत्र (कान) द्वारा सुनने से श्रुतिज्ञान होता है कि (क) (ख) इत्यादि और चक्षुः(नेत्र) द्वारा अक्षरका रूप देखके मन द्वारा पहचाने तव मति ज्ञान होता है कि यह (क) (ख) इस विधि से ज्ञान होता है और इसी तरह गुरु के मुख से शास्त्रद्वारा सुनके भगवान् का स्वरूप प्रतीत (मालूम) होता है कि महावीर स्वामीजी की ७ हाथकी ऊञ्ची काया थी स्वर्ण वर्ण था सिंह लक्षण था अनन्त ज्ञानादि चतुष्टय गुण थे इत्यादि का जानकार होजाता है और वही मूर्तिको देखके पहचान सकता है कि यह महा

वीरजीकी मूर्ति वना रक्खी है परन्तु जिसने गुरुमुखसे श्रुत ज्ञान नहीं पाया अर्थात् भगवान् का स्वरूप नहीं सुना उसे मूर्तिको देखके कभी ज्ञान नहीं होगा कि यह किसकी मूर्ति है जैसे अनपढ़ अक्षर कभी नहीं वाचसकता फिर तुम अक्षराकारको देखके तथा मूर्तिको देखके ज्ञान होना किस भूलसे कहते हो ज्ञान तो ज्ञान से होता है, क्योंकि अज्ञानीको तो पूर्वोक्त मूर्तिसे ज्ञान होता नहीं और ज्ञानीको मूर्तिकी गर्ज नहीं इत्यर्थः॥

पूर्वपक्षी–यदि ज्ञानसे ज्ञान होता है तो फिर तुम पोथीयें क्यों वाचते हो॥

उत्तरपक्षी–ओहो तुम्हें इतनीभी खबर नहीं कि हम पोथीयें क्यों वाचते हैं भला मैं बता देती हूं अपनी भूलके प्रयोगसे क्योंकि पहिले

महात्मा १४।१९ पूर्वके विद्याके पाठी औरब्रह्मा-
गम पाठी थे वे कौनसे पोथीयों के गाडेलिये
फिरे थे वे तो कंठाग्रसे ही गुरु पढ़ाते थे और
चेले पढ़ते थे परन्तु हमलोक कलिके जीव अ-
ल्पज्ञ विस्मृति बुद्धिवाले पढ़ा हुआ भूल २
जाते हैं ताते जो अक्षरोंके रूप पूर्वोक्त निमि-
त्तोंसे सीखे हुये हैं उनका रूप पहचानकर याद
में लाते हैं यों वाचते हैं ॥

पूर्वपक्षी–हम भी तो भगवान्‌कास्वरूप भूल
जाते हैं ताते मूर्तिको देखके याद करलेते हैं।

उत्तर पक्षी–अरे भोले भगवान् का स्वरूप
तो विद्वान् धार्मिक जनोंको क्षणभर भी नहीं
भूलता है क्योंकि जिस वक्त गुरुमुखसे शास्त्र
द्वारा सिद्ध स्वरूप सत्‌चिदानन्द अजर अमर
निराकार सर्वज्ञ सदा सर्वानन्द रूप परमे-

श्वर का स्वरूप तथा तीर्थंकर देवका अर्थात्
धर्मावतारोंका अनन्त चतुष्टय ज्ञानादि एक
सम स्वरूप सुना उसी वक्त हृदयमें अर्थात्
मतिमें नकसा, होजाता है वह मरणपर्यंत नहीं
विसरता तो फिर पत्थरका नकसा (मूर्ति) को
क्या करेंगे जिसके लिये नाहक अनेक आ-
रम्भ उठाने पड़ें॥

(८) पूर्वपक्षी—भला किसी बालकने लाठी
को घोड़ा मान रक्खा है तुम उसे घोड़ा कहो
कि हे बालक अपना घोड़ा थाम ले तो तुमे
मिथ्या बाणीका दोष होय कि नहीं।

उत्तरपक्षी—उसेघोड़ाकहनेसेतोमिथ्याबाणीका
दोष नहीं क्योंकि उस बालकने अज्ञानता से
उसको घोड़ा कल्प रक्खाहै तातें उस कल्पना
को ग्रहके घोड़ा कह देते हैं परंतु उसे घोड़ा

समझके उसके आगे घासदानेका टोकरा तो नहीं रखदेते हैं यदि रक्खें तो मूर्ख कहावे ऐसे ही किसी बालक अर्थात् अज्ञानीने पाषाणादिका बिम्ब तथा चित्र बनाके भगवान् कल्प रक्खा है तो उसको हमभी,भगवान्काआकार कहदें परंतु उसे वंदना नमस्कार तो नहीं करें और लड्डू पेडे तो अगाड़ी नहीं धरे इत्यर्थः ।

पूर्वपक्षी-खांडके खिलौने हाथी घोड़ादि आकार संचे के भरे हुये उन्हें तोड़के खाओ कि नहीं ।

उत्तरपक्षी-उनके खानेका व्यवहार ठीक नहीं

पूर्वपक्षी-उसके खानेमें कुछ दोष है ।

उत्तरपक्षी-दोष तो इतनाहीहैकि हाथीखाया घोड़ा खाया यह शब्द अशुद्ध है ।

पूर्वपक्षी-यदि जड़पदार्थका आकार वा नाम

धरके तोड़ने खानेमें दोष है तो उसके वंदने पूजनेसे लाभ भी होगा।

उत्तरपक्षी-ओहो तुम यहांभी चूके क्योंकि कई क्रिया ऐसी होती हैं कि जिनके तोड़ने फोड़ने में दोष तो भावाश्रित होजाय परंतु उनके पूजनेसे लाभ न होय।

पूर्वपक्षी-यह क्या कोई दृष्टान्त है।

उत्तरपक्षी-यथाकोई पुरुष मिट्टी की गौ बनाके उस को हिंसा के भावसे छेदे (तोड़े) तो उस पुरुषको गौ घातका दोष लगे वा नहीं

पूर्वपक्षी हां लगे।

उत्तरपक्षी-यदि कोई पूर्वोक्त मिट्टीकी गौबना के उसे दूधलाभकेभावसेपूजे और बिनती करें कि हेगौमाता दूधदेतो ऐसे दूधका लाभहोय।

पूर्वपक्षी-नहीं परंतु हमको तो यही सिखा

रक्खा है कि मूर्ति तो कुछ नहीं कर सक्ती भावोंसे भगवान् मान लिये तो भावों का ही फल मिलेगा यथा राजनीतौ :–

नदेवोविद्यतेकाष्ठे, न पाषाणेनमृन्मये, भावेषु विद्यतेदेव, स्तस्माद् भावोहिकारणम् । १ ।

अर्थ–काठ में देव नहीं विराजते न पाषाण में न मिट्टी में देव, तो भाव में हैं ताते भाव ही कारण रूप है । १ ।

उत्तरपक्षी–तुम्हारा यह कहनाभी उदय के जोर से है अर्थात् भूल का है क्योंकि कोई पुरुष लोहे में सोनेका भाव करले कि यह है तो लोहे का दाम परन्तु मैं तो भावों से सोना मानताहूं अब कहो जी उसे सोनेके दाम मिल जायेंगे अपितु नहीं । तो फिर इस धोखे में ही न रहना कि सर्वस्थान (सबजगह)

भावोंहीका फल होता है क्योंकिभावोंका फल भी कथचित् पूर्वोक्त यथा तथ्य अर्थ में ही होता है।

(९)पूर्वपक्षी–यह तो सबठीकहै परंतु जोअन जान लोक कुछ ज्ञाननहीं जानते उनको मंदिर में जानेका आलंबन होजाता है, इसी कारण मंदिर मूर्ति बनवाये गये हैं॥

उत्तर पक्षी–यह तो फिर तुम अपने मन के राजा हो चाहे कैसे ही मन को लडालो परन्तु सिद्धान्त तो नहीं क्योंकि तुम प्रमाण कर चुके हो कि अनजानों के वास्ते मंदर मूर्तियें हैं, सो ठीक है क्योंकि चाणक्य नीति दर्पणमें भी यों ही लिखा है अध्याय चार, श्लोक १९में

अग्निर्देवो द्विजातीनां, मुनीनां हृदिदैवतम्।
प्रमाति स्वल्पबुद्धीनां, सर्वत्र समदर्शिनाम्॥

अर्थ-द्विजाति ब्राह्मण आदिक अग्नि होत्री अग्नि को देवता मानते हैं । मुनीश्वर हृदय स्थित आत्म ज्ञान को देव मानते हैं अल्प बुद्धि लोक अर्थात् मूर्ख प्रतिमा (मूर्ति) को देव मानते हैं, समदर्शी सर्वत्र देव मानते हैं ॥ १९ ॥ और हमने भी बड़े बड़े पण्डित जो विशेष कर भक्ति अंग को मुख्य रखते हैं, उन्हों से सुना है कि यावद् काल ज्ञान नहीं तावत् काल मूर्ति पूजन है और कई जगह लिखा भी देखनेमें आया है यथा जैनीदिगम्ब राम्नायी भाई शमीरचन्द जैनप्रकाश उरदू किताब सन् १९०४ लाहोर में छपी जिसके सफा ३८ सतर ४ से ९ तक लिखता है-जो शषस वैराग्य भावको पैदाकरना चाहताहै उस के लिये भगवान् की मूर्ति निशान का काम

देती है और जब उसकेखयाल पुखता होजाते हैं तब फिर उसको मूर्तिके दर्शन करनेकी कुछ जरूरत नहीं रहती चुनाचे ऋपियों और मुनियों के लिये मूर्ति पूजन करना जरूरी नहीं है और यह भी कहते हैं गुडियों के खेलवत् अर्थात् जैसे छोटी छोटी बालिका (कुड़ियां) गुडीयों के खेल में तत्पर हो के गहने कपड़े पहराती हैं और व्याह करती हैं परंतु जब वे स्यानी बुद्धिमती होजाती हैं तब उन गुड़ीयों को अवस्तु जानके फैंक देती हैं ऐसेही जबतक हम लोगोंको यथार्थ तत्त्वज्ञान न होवे तबतक मूर्ति में तत्पर होकर अर्थात् दिल से प्रेमकर२ न्हावावें धुवावें खिलावें (भोगलगावें) शयन करावें जगावें इत्यादि पूजा भक्ति करें ॥

उत्तरपक्षी-क्योंजी गुडीयोंका खेल उन लड़

कीयों को स्यानी और बुद्धिमती होनेका कारण है अर्थात् गुडीयां खेलें तो बुद्धिमती होवें न खेलें तो बुद्धिमती नहीं होवें क्योंकि कारण से कार्य्य होता है ॥

पूर्वपक्षी-नहीं जी गुडीयोंका खेलना अकल मंद होनेका कारण नहीं है अकल मंद होने का कारण तो विद्यादि अभ्यासका करना है गुडीयोंका खेलना तो अविद्याका पोषण है ॥

उत्तरपक्षी–अब इस में यह भ्रम पैदा हुआ कि तुम मूर्ति पूजक कभी भी ज्ञानी नहीं होते क्योंकि हम लोक देखते हैं कि मूर्ति पूजकों ने मरण पर्यंत भी मूर्ति का पूजना नहीं छोड़ा तातें सिद्ध हुआ किमूर्ति पूजतेपूजते ज्ञान कभी नहीं होता यदि होता तो ज्ञान हुये पीछे मूर्ति का पूजना छोड़ देते तो हम भी जान लेते कि

हां इन्होंने ५-७ वर्ष मूर्ति पूजी है जिससे ज्ञान होगया है, अब छोड़दो क्योंकि तुम कहचुके हो कि यावद्काल ज्ञान नहीं तावद्काल मूर्ति का पूजन है। हे भ्रातः वहुत कहानी क्या ज्ञान का कारण मूर्ति का पूजन नहीं है ज्ञान का कारण तो पूर्वोक्त ज्ञान का अभ्यास ही है ताते पूर्वोक्तअज्ञान क्रिया अर्थात् गुडियोंका खेलना छोड़ो ज्ञानी बनो।

(१०) पूर्वपक्षी-भलाजी तीर्थंकर देव तो मुक्त हो गये हैं(सिद्धपद) में हो गये हैं तो नमो अरिहंताणं क्यों कहते हो।

उत्तरपक्षी-क्या तुम्हें इतनी भी खबरनहीहै कि जघन्यपद २० तीर्थंकर तोअवश्य हीमनुष्य क्षेत्र में होते हैं, यदि ऋषभादि की अपेक्षा से कहोगे तो सूत्रसमवायांग आदिमें ऐसा पाठ है

नमो त्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं आदि ग-राणं तित्थगराणं जाव संपत्ताणं नमोऽजिनाणं जीयेभयाणं ॥

अर्थ–नमस्कार हो अरिहंत भगवंत जी को जो धर्मकी आदि करके चार तीर्थ अर्थात् साधु १ साध्वी २ श्रावक ३ श्राविका ४ इनकी धर्म रीति रूप मुक्ति मार्ग करके यावत् (जहां तक) सिद्ध पद में प्राप्ति भये ऐसे जिनेश्वर को नमस्कार है जिन्हों ने जीते हैं सर्व संसारीभय (जन्म मरणादि) अर्थात् पूर्वले तीर्थंकर पद के गुण ग्रहण करके सिद्धपदमें नमस्कार कोजाती है क्योंकि अनंत ज्ञानादि चतुष्टय गुण तीर्थ-कर पद में थे वह गुण सिद्धपद में भी मोजूद हैं और यह भी समझ रखना कि जो नमो सि-द्धाणं पाठ पढ़ना है इस से तो सर्व सिद्धपदको

नमस्कार है और जो नमो त्थुणंका पाठ पढ़ना है इससे जो तीर्थंकर और तीर्थंकर पदवी पा कर परोपकार करके मोक्ष हुये हैं उन्हीं को नमस्कार है। इत्यर्थः ॥

(११) पूर्वपक्षी–यह तो आपने ठीक समझा-या परंतु एक संशय और है कि जो मूर्ति को न माने तो ध्यान किस का धरे और निसाना कहां लगावे?

उत्तरपक्षी–ध्यान तो सूत्रस्थानांगजी उवाई जी आदि में चेतन जड़ तत्त्व पदार्थका पृथक् २ विचारने को कहा है अर्थात् धर्मध्यानशुक्लध्यान के भेद चले हैं परंतु मूर्ति का ध्यान तो किसी सूत्र में लिखा नहीं हां ध्यान की विधि में नासाग्रादि पै दृष्टिका ठहराना भी कहा है परंतु हाथों का बनाया बिम्ब धर के उस का ध्यान

करना ऐसा तो लिखा देखने में आया नहीं और निसाना जिस के लगाना हो उस के लगावे परंतु रस्ते में ईंट पत्थर धरके उसमें न लगावे अर्थात् श्रुतिरूप तीर परमेश्वरके गुण रूपस्थल में लगाना चाहिये परंतु रस्तेमें पत्थर की मूर्ति को धरके उसमें श्रुति लग.नी नहीं चाहिये क्योंकि जब श्रुति अर्थात् ध्यान मूर्ति में लगजायगा तो परमेश्वरके परम गुणों तक कभी नही पहुचेगा। इत्यर्थः।

(१२) पूर्वपक्षी–आपने युक्तियों के प्रमाण देकर मूर्तिपूजा का खंडन खूब किया और है भी ठीक परतु हमने सुना है कि सूत्रोंमें ठाम ठाम मूर्ति पूजा लिखी है यह कैसे है?

उत्तरपक्षी–सूत्रों में तो मूर्तिपूजा कहीं नहीं लिखीहै,यदि लिखीहै तो हमें भी दिखाओ।

पूर्वपक्षी–भला क्या तुम नहीं जानते हो।

उत्तरपक्षी–भला जानते तो क्या कहते हुये हमारी वृत्ति बिगड़ जाती अर्थात् इस श्रद्धा वाले (चैतनपूजक) गृहस्थियोंके द्वारे भिक्षा न मांग खाते जड़पूजक गृहस्थियों के द्वारे भिक्षा मांग खाते।

पूर्वपक्षी–कहते हैं कि सूत्र राय प्रश्नी, उपासकदशांग, उवाई, ज्ञाता धर्मकथा, भगवती जी आदिक में लिखा है।

उत्तरपक्षी–ओहो तुम सावद्याचार्योंके लेख के धोखे में आकर और सूत्रकारों के रहस्य को न जाननेसे ऐसे कहते हो कि सूत्रोंमें मूर्तिका पूजन धर्म प्रवृत्तिमेंलिखा है लो अब जहांजहां सूत्रोंमें से मूर्तिपूजनका भ्रमहै वहां २ का मूल पाठ और अर्थ लिखके दिखा देतीहूं कि यहतो

मूलपाठ से अर्थ होता है और यह संबन्धार्थ होता है और यह टीका टब्बकारोंका सूत्रार्थसे मिलता अर्थ है यह पक्षहै यह निर्युक्ति भाष्य कारोंका पक्ष है और यह कथाकार गपोड़े हैं और इसमें यह तर्क वितर्क है इत्यादि प्रश्न उत्तर कर के लिखा जाता है।

प्रश्न—मूर्तिपूजक सूर्याभ देवने जिन पडिमा पूजी है।

उत्तर—चैतन पूजक देव लोकों में तो अकृत्रिम अर्थात् शाश्वती बिन बनाई मूर्तियें होती हैं और देवताओं का मूर्ति पूजन करना जीत व्यवहार अर्थात् व्यवहारिक कर्म होता है कुछ सम्यग् दृष्टि और मिथ्या दृष्टियों का नियम नहीं है कुल रूढ़ीवत् समदृष्टि भी पूजते हैं, मिथ्या दृष्टि भी पूजते हैं।

और सूत्रार्थके देख त्यां ऐसाभी संभवहोता है कि वह देवलोकादिकों में किसी देव की मूर्तियेंहों क्योंकि उवाईजी सूत्र में श्रीमहावीर तीर्थंकर देवजीके शरीरका शिखा से नख तक व-र्णन चलाहै वहां भगवान्के मंशु अर्थात् श्मश्रु (दाढी मूछें) चली हैं और चुंचुवें नहीं चले हैं और सूत्रराय प्रश्नीजीमें जिन पडिमाका नख से शिखा तक वर्णन चला है वहां प्रतिमाके चुं-चुये चले हैं और दाड़ी मुच्छां नहीं चलीहैं और जो जैनमतमेंसे पूर्वोक्त पाषाणापासक निकले हं सो ये भी जिन पडिमा (मूर्तियें) बनवाते हैं उन मूर्तियोंके भी दाढ़ी मूछ का आकार नहीं बनवाते हैं इत्यर्थः और नमोत्थुणं के पाठ वि-षय में तर्क करोगे तो उत्तर यह है, कि वह पू-र्वक भावसे मालूम होताहै कि देवता परम्परा

व्यवहार से कहते आते ह, अथवा भद्रबाहु स्वामीजीके पीछे तथा बारावर्षी कालके पीछे लिखने लिखानेमें फर्क पड़ा हो अतः (इसी कारण) जो हमने अपनी बनाई ज्ञान दीपिका नाम की पोथी संवत् १९४६ की छपी पृष्ठ६८ में लिखा था कि मूर्ति खण्डन भी हठहै (नोट) वह इस भ्रम से लिखा गया था कि जो शाश्वती मूर्तियें हैं वह २४ धर्मावतारोंमेकीहैं उन का उत्थापक रूप दोष लगनेकेकारणखण्डन भी हठ है,परतु सोचकर देखागया तो पूर्वोक्तकारण से वह लेख ठीक नहीं, और प्रमाणीक जैन सूत्रोंमें मूर्ति का पूजन धर्म प्रवृत्ति में अर्थात् श्रावक के सम्यक्तव्रतादि के अधिकारमें कहीं भी नहीं चला इत्यर्थः।

तर्क पूर्वपक्षी–यों तो हरएक कथन को कह देंगें कि यह भी पीछे लिखा गया है।

उत्तरपक्षी– नहीं नहीं ऐसा नहीं होसक्ता है क्योंकि जो प्रमाणीक सूत्रों में सविस्तार प्रकट भाव है उनमें कोईभी सूत्रानुयायी तर्क वितर्क अर्थात् चर्चा नहीं करसक्ता है यथा जीव,अजीव, लोक,परलोक, बंध, मोक्ष, दया क्षमादि प्रवृत्तियों में परंतु प्रमाणीक सूत्रों में धर्म प्रवृत्ति के अधिकार में प्रतिमाका पूजन नहीं चला है यदि चला होता तो फिर तर्क कौन कर सकता था, और मत भेद क्यों होते हां कहीं २ से चेइय शब्द को ग्रहणकरकरके अल्पज्ञजन चर्चा, क्चा, लड़ाई करते रहते हैं जिस चेइय शब्दके चितिसंज्ञाने इत्यादि धातु से ज्ञानादि अनेक अर्थ हैं जिसका स्वरूप आगे

लिखा जायगा और इस पूर्वक कथन की स-
बूती यह है कि सूत्र उवाईजी में पूर्ण भद्र
यक्षके यक्षायतन अर्थात् मंदिरका और उसकी
पूजाका पूजाके फलका धनसंपदादिका प्राप्ति
होना इत्यादि भली भांति सविस्तार वर्णन
चला है और अंतगढ़जी सूत्रमें मोगर पाणी
यक्ष के मंदिर पूजा का हरणगमेषी देवकी
मूर्तिकी पूजा का और विपाक सूत्र में ऊंबरयक्ष
की मूर्ति मंदिर का और उस की पूजाका फल
पुत्रादि का होना सविस्तार पूर्वोक्त वर्णन चला
है परन्तु जिनमदिर अर्थात् तीर्थंकर देवजीकी
मूर्ति के मंदिरकी पूजाका कथन किसी नगरी
के अधिकारमें तथा धर्मप्रवृत्ति के अधिकार में
अर्थात् जहां श्रावक धर्मका कथन यथा असुक
श्रावक ने असुक तीर्थंकर का मंदिर वनवाया

इस विधि से इस सामग्री से पूजा करी वा यात्रा करी इत्यादि कथन कहीं नहीं चला यथा प्रदेशी राजा को केशीकुमारजीने धर्म बताया श्रावक व्रत दिये वहां दयादान तपादि का करना बताया परञ्च मंदिर मूर्ति पूजा नहीं बताई न जाने सुधर्म स्वामीजीकी लेखिनी(कलम) यहां ही क्यों थकी हा इतिखेद परंतु हे भव्य इस पूर्वोक्त कथन का तात्पर्य यह है कि वह जो सूत्रों में नगरियों के वर्णन के आद में पूर्ण भद्रादि यक्षोंके मंदिर चले हैं सो वह यक्षादि सरागी देव होतेहैं और बलि वाकुल आदिक की इच्छा भी रखते हैं और राग द्वेष के प्रयोग से अपनी मूर्ति की पूजाऽपूजा देखके वर शराप भी देतेहैं ताते हरएक नगर की रक्षा रूप नगर के बाहर इनके मंदिर हमेशां से चले

आते हैं सांसारिक स्वार्थ होने से परंतु मुक्ति के साधन में मूर्ति का पूजन नहीं चला यदि जिन मार्ग में जिन मंदिर का पूजना सम्यक्त धर्म का लक्षण होता तो सुधर्म स्वामी जी अवश्य सविस्तार प्रकट सूत्रों में सर्व कथनों को छोड़ प्रथम इसी कथन को लिखते क्योंकि हम देखते हैं कि सूत्रों में ठाम २ जिन पदार्थों से हमारा विशेष करके आत्मीय स्वार्थ भी सिद्ध नहीं होता है उनका विस्तार सैंकड़े पृष्ठों पर लिख धरा है, यथा ज्ञाताजी में मेघ कुमार के महल, मल्लिदिन्न की चित्रसाली, जिन रस्किया जिन पालिया के अध्ययन में चार वागोंका वर्णन, और जीवाभिगमजी रायप्रश्नी में पर्वत,पहाड़,वन,वाग पंचवर्ण के तृणादि का पुनःपुनः वर्णन विशेष लिखाहै प-

रंतु जिसको मूर्ति पूजक मुक्ति का साधन क-
हते हैं, उस मंदिर मूर्ति का विस्तार एक भी
प्रमाणीक मूलसूत्र में नहीं लिखा यदि तर्क
करें कि रायप्रश्नीजी जीवाभिगमजी में जिन
मंदिर का भी अधिकार है उत्तर यह तो हम
पहिले ही लिख चुके हैं कि देवलोकादिकों में
अकृत्रिम अर्थात् शाश्वती जिनमंदिरमूर्ति देवों
के अधिकार में चली हैं परन्तु किसी देश नगर
पुरपाटनमें कृत्रिम अर्थात् पूर्वोक्त श्रावकों के
बनवाये हुयेभी किसी प्रमाणीकसूत्रमें चले हैं
अपितु नहीं ताते सिद्ध हुआ कि जैनशास्त्रों में
साधु श्रावकको मंदिर का पूजना नहीं चला है,
अब जो पाषाणोपासकचेइयशब्दको ग्रहण करके
मंदिर मूर्ति का पूजना ठहराते हैं अर्थात् अर्थ
का अनर्थ करते हैं इसका संवाद सुनो ॥

प्रश्न-(१४) पूर्वपक्षी उवाई जी सूत्र के आद ही में चम्पापुरी के वर्णन में (बहवे अरिहन्त चेइय) ऐसा पाठहै अर्थात् चम्पापुरी में बहुत जिनमन्दिर हैं।

उत्तर पक्षी-उवाई जी में पूर्वोक्त पाठ नहीं है यदि किसी २ प्रतिमें यह पूर्वोक्त पाठ है भी तो वहां ऐसा लिखा है कि पाठान्तरे अर्थात् कोई आचार्य ऐसे कहते हैं इससे सिद्ध हुआ कि यह (प्रक्षेप) क्षेपक पाठ है॥

पूर्वपक्षी-इसीसूत्रमें अंवडजी श्रावकने जिन प्रतिमा पूजी है॥

उत्तरपक्षी-यह तुम्हारा कहना अज्ञानता का सूचक है अर्थात् सूत्र के रहस्य के न जानने का लक्षण है क्योंकि इस अंवड जी के मूर्ति पूजने का जो शोर मचाते हैं तो इस विषय

का मैं मूल पाठ और अर्थ और उस का भाव प्रकट लिख के दिखा देती हूं बुद्धिमान् पक्षको थोड़ी सी देर अलग धर के स्वय ही विचार करेंगे कि इस पाठ से मंदिर मूर्ति का पूजना कैसे सिद्ध होता है।

उवाई जी सूत्र २२ प्रश्नों के अधिकार में प्रश्न १४ में लिखा है अंम्मडस्सणं परिव्वाय गस्स णोकप्पइ, अणउत्थिएवा, अणउत्थिय देवयाणिवा, अण उत्थियं परिग्गाहियाणिवा अरिहंत चेइयं वा, वंदित्तएवा नमंसित्तएवा जावपज्जवासित्तएवा णणत्थ अरिहंतेवा अरिहंत चेइयाणिवा।

अर्थ

अम्बड नामा परिब्राजक को (णोकप्पइ) नहीं कल्पै (अणुत्थिएवा) जैनमत के सिवाय

अन्ययुत्थिक शाक्यादि साधु १ (अण) पूर्वोक्त अन्य युत्थिकों के माने हुये देव शिवशंकरादि २ (अणउत्थिय परिग्गहियाणिवा अरिहंतचेइय) अन्य युत्थिकों में से किसी ने (परिग्गहियाणि) ग्रहण किया (अरिहंतचेइय) अरिहंतका सम्यक् ज्ञान अर्थात् भेषतोहै, 'परिव्राजक शाक्यादिका और सम्यक्त्वव्रत, वा अणुव्रत, महाव्रत रूप धर्म अंगीकार किया हुआ है जिनाज्ञानुसार ३ इन की (वंदितएवा) वंदना (स्तुति) करनी (नमं सितएवा) नमस्कारकरनी यावत् (पज्जुवासित एवा) पर्युपासना (सेवा भक्ति का करना) नहीं कल्पै

पूर्वपक्षी–यह अर्थ तो नयाही सुनाया।

उत्तरपक्षी–नया क्या इसपाठका यही अर्थ यथार्थ है।

पूर्वपक्षी—इस अर्थ की सिद्धिमेंकोई दृष्टांत साक्षी है।

उत्तरपक्षी—हां २ सूत्र भगवती शतक २५ मा ६ नियंठों के अधिकारमें ६ नियठों में द्रव्यें तीनों लिंग कहे हैं सलिंग १ अन्यलिंग २ गृहि लिंग ३ अर्थात् भेषतो चाहे सलिंगी जिन भाषित रजो हरण मुख वस्त्रिका सहित होय १ चाहे अन्य लिंगी दंड कमण्डलादि सहित होय २ चाहे गृहिलिंगी पगड़ी जामा सहित होय परन्तु भावें सलिंगी है, अर्थात् जिन आज्ञा नुसार संयम सहित है इत्यादि इसका तात्पर्य यह है कि किसी अन्य लिंगवाले साधुने अरि हन्त का ज्ञान अर्थात् भगवान्‌ने अपने ज्ञानमें जिस संयम वृत्ति को ठीक जाना है और कहा है उस आज्ञानुसार संयमको ग्रहण करलिया

है परन्तु अन्य लिंगको (भेषको) नहीं छोड़ा है तोउसको वंदना करनीनहीं कल्पै तथा अम्बड जी को ही समझलो कि भेषतो परिव्राजक का था और ज्ञान अरिहंतका ग्रहण किया हुआथा अर्थात् पूर्वोक्त संम्यक्त सहित १२ व्रत धारी श्रावक था परन्तु उसको भी श्रावक नमस्कार वंदना नहीं करते क्योंकि जो वड़ा श्रावकजान के उसे छोटे श्रावक नमस्कार करें तो अजान और लघु संतानादि देखने वाले यों जाने कि यह परिव्राजक दंडी आदिक भी श्रावकोंकेवंदनीय हैं तो फिर वह हर एक पाखंडी वाह्य तपस्वी धूनी रमाने वाले चरस उड़ाने वाले कन्द मूल भक्षणकरनेवाले असवारियों पर चढ़नेवाले डेरे वन्ध परिग्रह धारियोंकी संगत करने लग जांय कि हमारे वड़े भी गंगा जी में मृतक के फूल

(अस्थि) गेरने जाते थे और ऐसे नशेबाज बावों को मत्था टेकते थे येही तारक हैं क्योंकि उन्हें अभ्यन्तर वृत्तिकी तो खबर नहीं पड़ती कि हमारे बडे, व्यवहार मात्र क्रिया करते थे तथा श्रावक पद को नमस्कार करते थे तांते मिथ्यात्वको उन्नति देनेका हेतु जानके बन्दना करनी कल्पै नहीं। इत्यर्थः।

पूर्वपक्षी–क्या श्रावकों को श्रावक वन्दना किया करते हैं जो अम्बड श्रावकको न करो।

उत्तरपक्षी–हां जिनमार्गमें वृद्ध (बड़े) श्रावकों को वन्दना करनेकी रीति है॥

पूर्वपक्षी–क्या किसी सूत्रमें चली है॥

उत्तरपक्षी–हां सूत्र भगवती शतक १२ मा उद्देशा १ संखजी श्रावक को पोखलीजी श्रावकने नमस्कार करी है यथा सूत्र॥

ततेणंसे पोक्खली समणोवासए,जेणेवपोसह साला, जेणे व संखे समणोवासए तेणेव उवा-गच्छ२इत्ता गमणागमणे पडिकम्मइ पडिकम्म-ईत्ता,संखं समणोवासयं वंद इनमंसइ,वंदइनमं सइत्ता एवं वायसी अर्थ ।

(ततेणं) तवते पोखली नाम समणोपासक (श्रावक) जे० जहां पोषधशाला जे० जहां संख नामा समणोपाशक (श्रावक) था (तणेव) तहां उवा० आवे आविने गम०इरिआवहीका ध्यान करे करके संखं०संखनामा श्रावकको (वंदइनमं सइरत्ता)वंदनानमस्कार करे करके(एवंवयासी) ऐसे कहता भया ॥

पूर्वपक्षी–भला इसका अर्थ तो आपने कर दिखलाया परन्तु (णणत्थ अरिहंतेवा अरिहंत चइयाणिवा) इसका अर्थ क्या करेंगे ।

उत्तरपक्षी–इसका जो अर्थ है सो कर दिखाते हैं परंतु बचा इस ही पाठ से तुम्हारा पर्वत फुड़ाना खानखुदाना पंजावा लगाना मंदिर मूर्ति बनवाना पूजा करानादिक सर्वारंभ जिनाज्ञा में सिद्ध होजायेगा कदापि नहीं लो यथार्थ सुनो (णणत्थ) इतना विशेष अर्थात् इन के सिवाय और किसीको नमस्कार नहीं करूंगा किनके सिवाय (अरिहंतेवा) अरिहंत जी को (अरिहंत चइयाणिंवा) पूर्वोक्त अरिहंत देवजी की आज्ञानुकूल संयम को पालनेवाले चैत्यालय अर्थात् चैत्यनाम ज्ञान आलयनाम घर ज्ञानका घर अर्थात् ज्ञानी (ज्ञानवान् साधु)गण धरादिकोंको वंदना करूंगा अर्थात् देवगुरु को देवपद में अरिहंत सिद्ध, गुरुपदमें आचार्य उपाध्याय मुनि इत्यर्थः और यह पीताम्बरी मूर्ति

पूजक ऐसा अर्थ करते हैं णणत्थ अरिहंतेवा अरिहंतचेयाणिवा (णणत्थ) इतना विशेष इनके सिवाय और को वंदना नहीं करनी किनके सिवाय (अरहंतेवा) अरिहंतजी के (अरिहंतचेइयाणिंवा) अरिहंत देवकी मूर्तिके अव समझने की वात है कि श्रावकने अरिहंत और अरिहंतकी मूर्ति को वंदना करनी तो आगार रक्खी और इनके सिवा सबको वंदना करनेका त्याग किया तो फिर गणधरादि आचार्य उपाध्याय मुनियों को वंदना करनी वंद हुई क्योंकि देव को तो वंदना नमस्कार हुई परन्तु गुरुको वंदना नमस्कार करनेका त्याग हुआ क्योंकि अरिहंत भी देव और अरिहन्तकी मूर्तिभीदेव, तो गुरु को वंदना किस पाठसे हुई ताते जो प्रथम हमनेअर्थ किया हैवही यथार्थहै।

पूर्वपक्षी-निरुत्तर होकर ठहर२ के वोला

कि यदि चेइय नामज्ञान का होता तो सूत्रोंमें ऐसा पाठ होताकि, मति चेइय श्रुतचेइय अवधिचेइय मनःपर्जवचेइय केवलचेइय।

उत्तरपक्षी—सूत्र कर्ता की इच्छा किसी नाम से लिखे यदि मति चेइय ऐसा न लिखने से ज्ञानका नाम चेइयन माना जायगा तो फिर मूर्ति का नाम चेइय कहना निश्चय ही खंडन हो जायगा क्योंकि सूत्रोंमें मूर्ति का नाम चेइय कहि नहीं लिखाहै यथा ऋषभदेव चेइय महावीर चेइय नाग चेइय भूत चेइय यक्षचेइय इत्यादि यदि लिखा होतो प्रकट करो जहां कहींसूत्रों में मूर्ति के विषयमे पाठआता है यथा रायप्रश्नीजीसूत्र, जीवाभिगमजीसूत्र में(अठसय जिनपडिमा)नागपडिमा भूतपडिमा यक्ष पडिमा इत्यादि तथा अंतगढ जी सूत्र

(मोगरपाणी पडिमा)हरिणगमेषीपडिमाइत्यादि तो फिर किस करतूती पर चेइय शब्द का अर्थ मूर्ति २ पुकारते हो,

(१५) पूर्वपक्षी उपासक दशा सूत्रमें आनंद श्रावकने मूर्तिपूजी है।

उत्तरपक्षी-भला तो पाठ लिख दिखाओ लुको के (छिपाके) क्यों रक्खाहै

पूर्व पक्षी--लो जी लिखदेते हैं (प्रगट करदेतेहैं) नो खलुमे भंते कप्पइ अज्ज पभी इचणं अणउथ्थिए वा अण उथ्थिय देवयाणि वा अणउथ्थिय परि ग्गहियाइं वा अरिहंत चेइ याइंवा वंदितएवा नमंसित्तएवा॥

उत्तरपक्षी-वसयही पाठ इसीपै मूर्तिपूजा कहतेहो इसका तो खण्डन हमअच्छी तरह अभी ऊपर लिखचुके हैं फिर पीसेका पीसना क्या॥

और यहां(अरिहंचेइय) यह पाठ प्रक्षेप अर्थात् नया डालाहुआ सिद्धहोताहै,क्योंकि किसीप्रति में है वहुलताइं प्रतियोंमें नहीं है और उपासक दशाअंगरेजी तरजुमेमेंभी लिखाहै,कि यहपूर्वोक्त पाठ नयाडाला हुआ है,यथा उपासक दशासूत्र जिस्का ए.एफ.रुडोल्फहरनलसाहिबनेअंगरेजी में तरजुमा कियाहै जोकि ई०सन् १८८५ में ऐसियाटिक सोसाइटी बङ्गाल कलिकत्तामेंछपा है पृष्ठ २३ मूल ग्रन्थ नोट १० और तर्जुमा पृष्ठ ३५ नोट९६ में यह लिखता है कि शब्द चेइयाइं ३ पुस्तकों में पाया अर्थात् विक्रमी संवत् १६२१ की लिखी में संवत् १७४५ की संवत्१८२४ की में चेइयाइं ऐसा पद है और २ पुस्तकों में अर्थात् संवत् १९१६ की संवत् १९३३की में अरिहंत चेइयाइं ऐसा पद है

इससे साफ़ सावत हुआ कि टीकामें से मूल.में नया डाला है * अर्थात् टीकाकारोंने नया डाला है। और सुना है कि जेसलमेर के भण्डारे में ताड़पत्र ऊपर लिखीहुई उपासक दशाकी प्रति है सवत् ११८६ ग्यारांसै छयासीकी लिखितकी उसमें ऐसा पाठ है,(अणउथ्थियपरिग्गहियाइ-चेइया)परन्तु (अरिहंतचेइयाइं) ऐसे नहीहैं,यह

---

*Extract from note 96 at page 35 of the Uvásagadasáo, translated by A F Rudolf Hoernle, Ph D

The words *Cheīyāim or Arihanta-Cheīyāim*, which the MSS here have, appear to be an explanatory interpolation, taken over from the commentary, which says the 'objects for reverence may be either Arhats (or great saints) or Cheiyas' If they had been an original portion of the text, there can be little doubt but that they would have been *Chêiyāni* The difference in termination, *pariggahiyani Chêiāim*, is very suspicious

पक्षपातीयोंने प्रक्षेप किया है मिथ्या डिंभ के सहारे के लिये बस पूर्वपक्षीओ अब द्रौपदी जी के पाठ का शरणालो ॥

(१६) पूर्वपक्षी–हांहांजी द्रौपदी जीकेमन्दिर पूजनेका प्रकट पाठ है इसमे तुम क्या तर्क करोगे ॥

उत्तरपक्षी–तर्क क्या हम यथार्थ सूत्रानुसार प्रमाण देके खंडन करेंगे, प्रथमतो तुम यहबताओ कि जैनमत वालों के कुल में अर्थात् जैनीयोंके घरमें मद मांस पकाया जाताहै वा नहीं ॥

पूर्वपक्षी–नहीं ।

उत्तरपक्षी–तो फिर कंपिलपुर का स्वामी द्रौपदराजा द्रौपदी के पिता के घर द्रौपदी के विवाह में मद मांस के भोजन बनाये गये थे

और राजाओं के डेरों में मदिरा मांस भेजा गया है, ताते सिद्ध हुआ कि द्रौपदराजा के घर द्रौपदी के विवाह तक जैनमत धारण किया हुआ नहीं था और तुम कहते हो द्रौपदी ने जिनमंदिर की पूजा करी क्या जिनमंदिर के पूजने वालों के घर मद मांस का आहार होता है अपितु नहीं तो सिद्ध हुआ कि द्रौपदी ने जिनेश्वर का मंदिर नहीं पूजा।

पूर्व पक्षी—हां हां द्रौपदी के विवाह में मद मांस सहित भोजन तो किये गये हैं, क्योंकि सूत्र श्रीज्ञाता जी अध्ययन १६ में द्रौपदी के विवाह के कथन में ऐसा पाठ है, (कोडुं विय पुरि से सद्दावेइ २त्ता एवं वयासी तुझे देवाणुपिया विउलं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं सुरंच, महुंच, मसंच, सिंधुच, पसन्नंच, सुवहु

अर्थात् असन १ पान २ खाद्यम् ३ स्वाद्यम् ४ मद्यं ५ मासं ६ मधु७ सिंधु ८ पसन्न ९, बहुत प्रकार के भोजन इत्यादि और जहां श्रावक आदिक दयावानोंके कुलों में जीमणका (ज़याफतका) कथन आता है वहां ४ प्रकार का आहार लिखा है यथा महावीर स्वामी जी के जन्म महोत्सव में महावीर स्वामी जी के पिता सिद्धार्थ राजा ने जीमण किया है, वहां कल्पसूत्र के मूल में ऐसा पाठ है (असणं,पाणं खाइमं, साइमं,उवखडावेइ२त्ता) परन्तु द्रौपदी जीके जिनमंदिर पूजनेका पाठ तो खुलासा है।

उत्तरपक्षी–पाठ भी लिखदिखाओ॥

पूर्वपक्षी–लो (तएणं सादोवइ रायवरकन्ना जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ मज्जण घर मणुप्पविस्सइ ण्हाया कयवलिकम्मा कय

कोउय मंगल पायच्छित्ता सुद्ध पावेसाइं वत्थाइं परिहियाइं मज्जणघराउंपडिनिस्कमइ निस्कमइत्ता जेणेव जिनघरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छइत्ता जिनघर मणू पविसइत्ता आलोए जिनपडिमाणं पणामं करेइ लोमहत्थयं परा-मुसई एवंजहा सुरियाभो जिन पडिमाओ अच्चेइ तहेव भाणियव्वं जावधुवंडहइ २त्ता वामंजाणु अंचेइ अंचेइत्ता दाहिण जाणु धरणि तलंसि निहट्टु तिखत्तो मुद्धाणं धरणी तलंसी निवेसेइ निवेसेइत्ता इसिंपच्चुणमइ करयल जावकट्टु एव वयासि नमोत्थुणं अरिहंत्ताणं भगवंत्ताणं जाव संपत्ताणं वंदइनमंसइ जिन घराओ पडिणिरकमइ ।

अर्थ-तवते द्रौपदी राजवरकन्या जहां मज्ज-नघर (स्नान करने का मकान) था वहां आयी

आके मज्जन करके बलि कर्म किया (घर के देव पूजे) तिलक किया मंगल किया शुद्ध हुई अच्छे वस्त्र पहरे मज्जनघर से निकली जहां जिनघर मंदिर था वहां आई जिन पडिमां को देखके प्रणाम किया चमर उठा के फटकारा लगाया (चौरी लेके झल्ल लाया) जैसे सुरयाभ देव ने जिन पडिमां की पूजा करी तैसे करी कहनी धूप दीनी गोडे निमा के नमोत्थुणं का पाठ पढ़ के नमस्कार करी जिनघर से बाहर आई ।

उत्तरपक्षी–इन में कितना ही पाठ तो सूत्रों से मिलता है कितना तो नहीं मिलता ।

पूर्वपक्षी–वह कितना २ कैसे २

उत्तरपक्षी–बहुधा यह सुनने और देखने में

भी आया है कि अनुमान से ७।७०० सै वर्षोंके लिखितकी श्रीज्ञाता धर्म कथा सूत्र की प्रति है जिसमें इतना ही पाठ है यथा (तएणं सादो वइ रायवर कन्ना जेणेव मज्जण घरे तणेव उवागच्छइ २त्ता मज्जनघर मणुप्पविसइ २त्ता एहायाकयवालिकम्मा कय कोउय मंगल पाय-छित्ता सुद्ध पावेसाइ वत्थाइं परिहियाइं मज्जण घराओ पडिणिक्खमइ २त्ता जेणेव जिनघरे तेणेव उवागच्छइं २त्ता जिनघरमणु पविसइ २त्ता जिन पडिमाणं अच्चणं करेइ २त्ता) बस इतनाही पाठ है और नई प्रतियों में विशेष करके पूर्वोक्त तुम्हारे कहे मूजव पाठ है ताते सिद्ध होता है कि यह अधिक पाठ पक्षपात के प्रयोग से प्रक्षेप अर्थात् नया मिलाया गया है ॥

पूर्वपक्षी–यदि तुम लोकों ने ही पक्ष से यह पाठ निकाल दिया हो तो क्या साबूती।

उत्तरपक्षी–साबूती यह है कि प्रमाणीक सूत्रोंमें और कहीं पूर्वोक्त श्रावक श्राविकाओंके धर्म प्रवृत्ति के अधिकार में तीर्थंकरदेवकी मूर्ति पूजा का पूर्वोक्त पाठ नहीं आया इसकारण से सिद्ध हुआ कि द्रौपदी ने भी धर्मपक्ष में मूर्ति नहीं पूजी १ और इस के सिवाय दूसरी साबूती यह है कि तुम्हारे माने हुये पाठ में सुरयाभ देव की उपमा दी है कि जैसे सुरयाभ देव ने पूजा करी ऐसे द्रौपदी ने करी परन्तु स्त्री को स्त्री की अर्थात् श्राविका को श्राविका की उपमा नदी यथा अमुका श्राविका अर्थात् सुलसा श्राविका रेवती श्राविका ने जैसे मूर्तिपूजा करी ऐसे द्रौपदी ने मूर्ति पूजा करी

अथवा आनन्दादि श्रावकों ने परन्तु किसी श्रावक श्राविकाने मूर्ति पूजी होती तो उपमा देते ना पूजी हो तो कहांसे दें हां जैसे देवते पूर्वोक्त जीत व्यवहार से मूर्ति पूजते हैं ऐसेही द्रौपदीने संसार खाते में पूजी होगी २।

पूर्वपक्षी-तीर्थंकर देवकी मूर्ति क्या संसार खाते में पूजते हैं।

उत्तरपक्षी-द्रौपदीने क्या तीर्थंकर की मूर्ति पूजी है यदि पूजी है तो पाठ दिखाओ कौन से तीर्थंकर की मूर्ति पूजी है यथा ऋषभ देवजी की शांतिनाथजी की पार्श्व नाथजी की महावीर जी की अर्थात् संतनाथ जी का मंदिर था कि पार्श्व नाथ जीका मंदिर था कि महावीर स्वामी जी का मंदिर इत्यादि। ३

पूर्वपक्षी–तीर्थंकर का नाम तो नहीं लिखा है जिन घर जिन प्रतिमा पूजी यह कहा है।

उत्तरपक्षी–यहां संबंध अर्थ से जिन घर जिन प्रतिमा का अर्थ काम देवका मंदिर मूर्ति संभव होता है क्योंकि वर्तमान में भी दक्षिण की तरफ अकसर रज पूत आदिकों में रसमे हैं कि कुंवारीयें वर के हेतु काम देव महादेव और गौरी आदिक की मंदिरमूर्ति को पूजती हैं ऐसे ही द्रौपदी राजवर कन्या ने भी अपने विवाहके वक्त वर हेतु काम देव की मूर्ति पूजी होगी यथा ग्रन्थोंमे(रामायण)में सीता कुमारी ने स्वयंवर मंडपमेंजाते वक्त धनुषों की पूजा करी है रुक्मणी कन्या ने ढाल सागर में वर के हेतु काम देव की पूजा की है इत्यर्थः

पूर्वपक्षी–कहीं काम देवको भी जिन कहाहै

उत्तरपक्षी–हां हैमी नाम माला अनेकार्थीय हेमाचार्य कृत में श्लोक है यथा वीतरागो जिनः स्यात् जिनः सामान्य केवली। कंदर्पो जिन स्स्यात् जिनोनारायण स्तथा १

अर्थ–वीत राग देव अर्थात् तीर्थ कर देव को जिन कहते हैं, सामान्य केवली को भी जिन कहते हैं,कंदर्प (काम देव) कोभी जिन कहते हैं,नारायण (वासु देवको) भी जिन कहते हैं ४ बस इन पूर्वोक्त चार कारणों से सिद्ध हुआ कि द्रोपदी ने जैनमत के अनुसार मुक्ति के हेतु वीत राग की मूर्ति नहीं पूजी है

पूर्वपक्षी–चुप ?

उत्तरपक्षी–इस पाठसे हमारे पूर्वोक्त कथन की एक और भी सिद्धी हुईकि हम जो चोदहमें प्रश्न अम्मड़ जी के अधिकारमें लिख आयेहैंकि

चैत्यचैत्यानि(चेइयाणि)शब्दका अर्थ ज्ञान ज्ञान वान्,यति,आदि सिद्धहोताहै,मूर्ति(प्रतिमा) नहीं क्योंकि जहांमूर्ति का कथन आवेगा वहांप्रतिमा शब्द होगा,सो तुम अबअच्छी तरह आंखेंखोल के द्रौपदी जी के पाठ को देखो कि यहां द्रौपदी जीने मूर्ति पूजी है तो (प्रतिमा) पाठ आया है (जिनपडिमाउ अच्चेइ) यदि तुम्हारे कहने के बमूजब चेइय शब्द का अर्थ मूर्ति होता अर्थात् मूर्ति को चैत्य कहते, तो यहां ऐसा पाठ होता कि (जिन चेइय अच्चेइ) सो है नहीं यदि कहीं टीका टब्बा कारों ने चेइय शब्द का अर्थ प्रतिमा लिखाभीहै तो मूर्ति पूजक पूर्वाचार्योंने पूर्वोक्तपक्षपात से लिखा है क्योंकि इसी तरह जहां भगवती शतक २० मा उद्देशा ९, मा में जंघा चारण विद्या चारण की शक्ति का कथन

आता है, जिस का पूर्वपक्षी पाषाणोपासक जल्दी ढोआ (भेट) ले मिलते हैं कि देखो जंघा चारण २ मुनियों ने मूर्ति को नमस्कार की है परन्तु वहां मुनियों के जाने का और मूर्ति के पूजने का पाठ नहीं है अर्थात् अमुक मुनि गया अपितु वहां तो विद्या की शक्तिके विषय में गौतमजीका प्रश्न है और महावीर जी का उत्तर है।

(१७) पूर्वपक्षी-यहतो प्रश्नहमारा ही है कि जंघाचारण विद्याचारण मुनियों ने मूर्ति पूजी है यह पाठ तो खुलासा है,भगवती जी सूत्र में

उत्तरपक्षी-अरे भोले भाई उस पाठ में तो मूर्ति पूजा की गंधि (मुस्क) भी नहीं है औरन किसी जैन मुनि ने किसी जड़ मूर्ति को वंदना नमस्कार करी कही है वहां तो पूर्वोक्तभाव से

भगवत के पूर्णज्ञान की स्तुतिकी कही हैक्यों कि ठाणांग जी सूत्र में, तथा जीवाभिगम सूत्र में नंदीश्वरद्वीप का तथा पर्वतों की रचना का विशेष वर्णन भगवंत ने किया है और वहां शाश्वतीमूर्ति मंदिरोंका कथनभी है परन्तुवहां भी मूर्ति को पडिमा नाम से ही लिखा है यथा जिन पडिमा ऐसे है परन्तुजिन चेइय ऐसे नहीं और भगवतीजीमें जंघाचारण के अधिकार में (चेइयाइं वंदइ) ऐसापाठ है इस से निश्चय हुआकि जंघाचारण ने मूर्ति नहीं पूजी अर्थात् मूर्ति को वंदना नमस्कार नहीं करी यदि करी होती तोऐसा पाठ होता कि (जिन पडिमाओ वंदइ नमंसइता) तिससे सिद्ध हुआकि जंघा-चारण मुनि ने (चेइयाइं वंदइ) इस पाठ से पूर्वोक्त भगवत के ज्ञान की स्तुति करी अर्थात्

धन्य है केवल ज्ञान की शक्ति जिस में सर्व पदार्थ प्रत्यक्ष हैं यथा सूत्र :-

जंघाचारस्सणं भंते तिरियं केवइए गइ विसए पणत्ता गोयमा सेणं इतो एगेणं उप्पाणं रुअगवरे दीवे समोसरणं करेइ करइत्ता तहं चेइ याइं वंदइ वंद इत्ता ततो पडि नियत माणे विएणं उप्याएणं णंदीसरे दीवे समोसरणं करेइ तहं चेइयाइं वंदइ वंदइत्ता इहमागच्छइ इह चेइ याइं वंदइ इत्यादि। अर्थ :-

गोतमजी पूछते भये हे भगवन् जंघाचारण मुनिका, तिरछी गतिका विषय कितना है गो- तम वह मुनि एक पहिली छाल में (कूदसें) रुचक वर दीपपर समोसरणकरता है (विश्राम करता है) तहां (चेइय वदइ) अर्थात् पूर्वोक्त

भगवत के पूर्णज्ञान की स्तुतिकी कही हैक्यों कि ठाणांग जी सूत्र में, तथा जीवाभिगम सूत्र में नंदीश्वरद्वीप का तथा पर्वतों की रचना का विशेष वर्णन भगवंत ने किया है और वहां शाश्वतीमूर्ति मंदिरोंका कथनभी है परन्तुवहां भी मूर्ति को पडिमा नाम से ही लिखा है यथा जिन पडिमा ऐसे है परन्तु जिन चेइय ऐसे नहीं और भगवतीजीमें जंघाचारण के अधिकार में (चेइयाइं वंदइ) ऐसापाठ है इस से निश्चय हुआ कि जंघाचारण ने मूर्ति नहीं पूजी अर्थात् मूर्ति को वंदना नमस्कार नहीं करी यदि करी होती तो ऐसा पाठ होता कि (जिन पडिमाओ वंदइ नमंसइता) तिससे सिद्ध हुआकि जंघा-चारण मुनि ने (चेइयाइं वंदइ) इस पाठ से पूर्वोक्त भगवत के ज्ञान की स्तुति करी अर्थात्

धन्य है केवल ज्ञान की शक्ति जिस में सर्व पदार्थ प्रत्यक्ष हैं यथा सूत्र :-

जंघाचारस्सणं भंते तिरियं केवइए गइ विसए पणत्ता गोयमा सेणं इतो एगेणं उप्पाणं रुअगवरे दीवे समोसरणं करेइ करइत्ता तहं चेइ याइं वंदइ वंद इत्ता ततो पडि नियत माणे विएणं उप्पाएणं णंदीसरे दीवे समोसरणं करेइ तहं चेइयाइं वंदइ वंदइत्ता इहमागच्छइ इह चेइ याइं वंदइ इत्यादि। अर्थ :-

गौतमजी पूछते भये हे भगवन् जंघाचारण मुनिका. तिरछी गतिका विषय कितना है गो- तम वह मुनि एक पहिली छाल में (कूदमें) रुचक वर दीपपर समोसरणकरता है (विश्राम करता है) तहां (चेइय वदइ) अर्थात् पूर्वोक्त

ज्ञान की स्तुति करे अथवा इरिया वही का ध्यान करनेका अर्थ भी संभव होता है क्योंकि इरिया वहीके ध्यानमें लोगस्स उज्जोयगरे कहा जाता है उसमें चौवीस तीर्थंकर और केवलीयों की स्तुति होती है और लोगस्स उज्जोय गरेका नाम भी चौवीस स्तव (चौवीसत्था)है फिर दूसरी छाल मे नंदीश्वरद्वीपमें समवसरण करे तहां पूर्वोक्त चैत्यवंदन करे फिर यहां अर्थात् अपने रहनेके स्थान आवे यहां चैत्य वंदनकरे अर्थात् पूर्वोक्त ज्ञान स्तुति अथवा इरिया वही चौवीसत्था करे, क्योंकि आवश्यकादि सूत्रों में कहा है साधुको गमनागमनकी निर्वृत्ति हुए पीछे इरिया वही पडिक्कमें विन कोई कार्य करना कल्पे नहीं इत्यर्थः ॥

इसमें एक वात और भी समझनेकी है कि

यहां इस जगह (चेइयाइं वंदइ) ऐसा पाठ आया है अर्थात् ज्ञानादि स्तव परन्तु (चेइयाइं वंदइ नमंसइ) ऐसा पाठ नहीं आया क्योंकि जहां नमस्कार का कथन आता है वहां साथ नमंसइ पाठ अवश्य आता है नाते और भी सिद्ध हुआ कि वहां केवल स्तुति की गई है, नमस्कार किसी को नहीं करी यदि मूर्ति को नमस्कारकरी होती तो वंदइ नमं सइ ऐसा भी पाठ आता अब इस में पक्ष की (हठ करनेकी) कौनसी बात बाकी है ॥

पूर्वपक्षी—वन्दइ शब्द का अर्थ स्तुति करना कहां लिखा है ॥

उत्तरपक्षी—जगह २ सूत्रों में वन्दइका अर्थ स्तुति करना लिखा है यथा (वन्दइ नमं सइता एवं वयासी) वन्दइ वन्दन (स्तुति) करके (नमं

सइत्ता) नमस्कार करके (एवं) अमुना प्रकार (वयासी) वकासी (कहता भया) इत्यादि तथा धातु पाठे आदि में ही लिखा है (वदि अभि वादन स्तुत्योः) अर्थात् वदि धातु अभिवादन स्तुति करनेके अर्थ में है, तथा अमरकोष द्वितीय कांडे श्लोक ९७ में (वंदिनः स्तुति पाठकाः) अर्थ वंदंतेस्तुवंते तच्छीलावंदिनः इत्यर्थः ॥

(१८) पूर्वपक्षी-यह तो आपने प्रमाण ठीक दिया परन्तु भगवती सूत्र शतक ३ उद्देशक २ में असुरेंद्र चमरेंद्र प्रथम स्वर्गमें गया है वहां अरिहंत चेइयं अर्थात् अरिहंतकीमूर्तिका शरणा लेकर गया लिखा है और साधुका पाठ न्यारा आता है, तो तुम वहां चेइय शब्द का क्या अर्थ करोगे क्योंकि वहां ज्ञानका शरणा लिया ऐसा तो सिद्ध नहीं होता है ॥

उत्तर पक्षी-लो इस का भी पाठ और पाठ से मिलता अर्थ लिख दिखाते हैं ॥

तएणंसे चमरे असुरिंदे असुरराया उहिं पउ जइ२त्ता मम उहिणा आभोएइ२त्ता इमेयारुवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था एवं खलु समणे भगवं महावीरे जंबूदीवे २ भारहे वासे सुसमार पुर नगरे असोगवणसंडे उज्जाणे असोगवर पायवस्स अहे पुढविशिला पट्टयंसि अट्ठम भत्तं पगिण्हित्ता एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ तंसेयं खलु मे समणं भगवं महवीरं निस्साए सक्किंदं देविंदे देवरायं सयमेव अच्चासायत्तएतिकट्टु ॥

अर्थ-तब ते चमर असुरइंद्र असुरराजा अवधि ज्ञान करके महावीर स्वामीजी गौतम ऋषि को कहते भये कि मेरे को देख के एतादृश

अध्यवसाय उपजा इस तरह निश्चय समण भगवंत महावीर स्वामी जंबूदीप भारतक्षेत्र सु-सुमार पुर नगरमें अशोक बनखण्ड उद्यानमें पुढ़वी शिलापट्ट ऊपर अष्टम भक्त (तेला) कर के एक रात्रिकी प्रतिज्ञा (१२ मी पडिमा) ग्रहण करके विचरते हैं, तो श्रय है मुझे श्रमणभगवन्त महावीर जी के निश्राय अर्थात् शरणा लेके सत्कृत इंद्र देवइंद्र देवोंके राजाको मैं आप जाः के असातना करूं अर्थात् कष्ट दूं ऐसा करता भया, अब देखिये जो मूर्ति का शरणा लेना होता तो अधोलोक। चमर चचाकी सभादिक में भी मूर्तियें थीं, वहां ही उनका शरणा ले लेता अपितु नहीं तिरछे लोक जंबूद्वीप में महा-वीरजी का शरणा लिया ॥

फिर जब सक्रेन्द्रने विचारा कि चमर इन्द्र

ऊर्धलोक में आने की शक्ति नहीं रखता है परन्तु इतना विशेष है ३ मांहला किसी एक का शरणा लेके आसक्ता है ॥ यथा सूत्र ॥

णणत्थ अरिहंतेवा, अरिहंतचेइयाणिवा अणगारे वा भावियप्पाणों, णीसाए उढ्ढंउप्पयन्ति ॥

अर्थ-(अरिहंतेवा) अरिहंतदेव ३४ अतिशय ३५ बाणी संयुक्त (अरिहंतचेइयाणिवा) अरिहंत चैत्यानिवा अर्थात् चैत्यपद (अरिहंतछद्मस्थ यति पद में) क्योंकि अरिहंत देव को जब तक केवलज्ञान नहीं होय तबतक पञ्चमपद (साधु पद)में होते हैं औरजब केवलज्ञान होजाता है तब प्रथम पद अरिहंत पद में होते हैं (अणगारे वा भावियप्पाणो) सामान्य साधु भावितात्मा इन तीनों में से किसी का शरणा लेके आवे। अब कहोजी मूर्तिपूजको इस पाठसे तुम्हारा मंदिर

पूजा का आरम्भ मुक्ति का पंथ सिद्ध होगया अरे भाई जो मूर्ति का शरणा लेना होता तो सुधर्म्म देव लोक में भी मूर्तियें थी वहां ही शरणाहोजाता मृत मंडलमें भागा क्यों आता नहींतो तुमही पाठ दिखलाओ जहां चमरेन्द्रने मूर्ति का शरणा लिया लिखाहो।

पूर्वपक्षी–अजी तुमने (अरि हंतचेयाइणिवा) इस का अर्थ अरि हंत चैत्यपद यह किस पाठ से निकाला है

उत्तरपक्षी–जिस पाठसे तुम मूर्ति पूजकोंने देवयं चेइयं का अर्थ प्रतिमा वत् ऐसे निकाला है क्योंकि सूत्रों में ठाम२ जहां२ अरिहंत देव जीको तथा,साधु गुरुदेवजीको वंदना नमस्कार का पाठ आता है,वहा ऐसा पाठ आता है (ति-खुत्तो अया हिणं पयाहिणं करि२ त्तावंदामि नमं

सासिलकोणि मन ेनि वचान मंगलं देवयं
चेइयं पज्ज व. स्वामि मन्यएवंदामि॰ १

अर्थ—तीनवार प्रदक्षिणा करके वंदना करके
नमस्कार करके सत्कार करके सनमान करके
कल्याण कारी देवयं नाम अरिहन्त देवकी अथवा
गुरुदेव की चेइयं नाम ज्ञान वान् की सेवाकरके
मस्तक निवाके वंदना है मेरी इत्यर्थ. और यह
मूर्ति पूजक अर्थात् आत्मारामजी आनन्दविजय अपने
बनाये सम्यक्त्वशल्योद्धार पोथे में विक्रमसंवत्
१९४० के छोर का जिस कुण्डी की रची हुई
दुर्गन्धी को २० वर्ष पीछे वल्लभविजय तथा
जसवंतराय गृहस्थी ने १९६० में लाहौर में
फिर छप वाके उछाली है, अपना और अपने
मतानुयायियों का शुभमति और शुद्ध गति से
उद्धार करने के लिये और अनन्त संसार के

लाभ के लिये, सो सम्यक्त शल्योद्धार पृष्ठ २४२ पंक्ति १९। २२में लिखतेहैं कि देवयं चेइयं का अर्थ तीर्थंकर और साधु नहीं अर्थात् तीर्थं-कर को तथा साधु को नमस्कार करे तो यों कहे कि तुम्हारी प्रतिमा की तरह (वत्) सेवा करूं इति अब समझो कि (देवयं चेइयं) इस पाठमें देवयंसे देव और चेइयं सेमूर्ति(प्रतिमा) अर्थ किया परंतु तरह (वत्) अर्थात् यह उपमावाचीअर्थ कौनसे अक्षरसे सिद्ध किया सो लिखो यह मन कल्पित अर्थ हुआ कि व्याक-रणकी टांग अड़ी फिर और अज्ञताकी अधि-कता देखोकि वंदना तो करे प्रत्यक्ष अरिहंत को और कहे कि प्रतिमाकी तरह तो अरिहतजीसे प्रतिमा जड़ अच्छीरही क्योंकिउपमा अधिक की दीजाती है यथा अपने सेठ (स्वामी) की

वंदना करे तो यों कहेगा कि तुमें राजा की तरह समझता हूं परंतु यों तो ना कहेगा कि तुमें नौकर की तरह समझता हूं ऐसे ही कोई मत पक्षी मूर्ति को तो कहभी देवे कि मैं मूर्ति को भगवान् की तरह मानता हूं इत्यादि।

(१९) पूर्वपक्षी-हमारे आत्मारामजी अपने बनाये सम्यक्त्व शल्योद्धार में जिसका उलथा १९६० के साल विक्रमी, देशी भाषा में किया है पृष्ठ २४३ पंक्ति ४ में लिखते हैं कि किसी कोष में भी चैत्य शब्द का अर्थ साधु (यति) नहीं करा है, और तीर्थंकर भी नहीं करा है कोषोमें तो (चैत्यं जिनौक स्तद्बिंबं चैत्यो जिन सभा तरुः) अर्थात् जिन मंदिर और जिन प्रतिमा को चैत्य कहाहै और चौतरे वंध बृक्ष का नाम चैत्य कहाहै इनके उपरान्त और

किसी वस्तु का नाम चैत्य नहीं कहा है,

उत्तरपक्षी–देखो कानी हथनी की तरह एक तरफी वेल खाने वत् अपने माने कोष और अपने मन माने चैत्य शब्द के तीन अर्थ प्रमाण कर लिये और चैत्य शब्द के ज्ञानादि अर्थों की नास्ति करदी परन्तु चैत्य शब्द के जैन सूत्र में तथा शब्द शास्त्रों में बहुत अर्थ (नाम) चले हैं इन में से हम अब शास्त्रानुसार कई ज्ञानादि नाम लिख दिखाते हैं॥

ज्ञानार्थस्य चैत्य शब्दस्य व्युत्पत्तिर्भणयते चिती संज्ञाने धातुः कवि कल्पद्रुम धातु पाठे तकारांतचकाराद्यधिकारे ऽस्ति तथा हि चतेञ् याचे चिती ज्ञाने चित् कङ् च चिति क् स्मृतौ इत्यादि ईकारानुबंधात्त्काक्च योरिण् निषेधार्थः इतिपश्चात् चित् इतिस्थिते

ततो नाम्युप धातकः सारस्वतोक्त सूत्रेण क प्रत्ययः तथा हेमव्याकरण पंचमाध्यायस्य प्रथम पादोक्त नाम्युपांत्य प्राकृक् दृज्ञः कः अनेनापि सूत्रेणकः प्रत्ययः स्यात् ककारो गुण प्रधिषेधार्थः पश्चात् चेतति जानाति इति च्चितः ज्ञानवानित्यर्थः तस्य भावः चैत्यं ज्ञान मित्यर्थः भावत स्तद्धितोक्तयण् प्रत्ययः

अब इस का मतलब फिर संक्षेप से लिखा जाता है,यथा ज्ञानार्थस्य चैत्य शब्दस्य व्युत्पत्तिः चिती संज्ञाने धातुः ईकार उच्चारणार्थः ततः कः प्रत्ययः ततो नाम्युपधेत्यनेन गुणः एवं कृते चेततीति चेतः इति सिद्धम् १ ।

इस रीति से चैत्य शब्द का अर्थ ज्ञान सिद्ध करते हैं पण्डित जन तुम कहते हो, चैत्य शब्द

के नाम पूर्वोक्त तीन ही हैं चौथा है ही नहीं लो अब और सुनो,

चैत्यं चित्त सम्बन्धि धारणा शक्तिः अर्थात् स्मरण रखने की शक्ति जिस को फारसी में हाफ़ज़ा याद रखने की ताकत कहते हैं २

चैत्यंचिता सम्बन्धि अर्थात् दाहाग्नि का प्रश्वी ३

चैत्यं जीवात्मा ४

चैत्यं सीमा (हद्द) ५

चैत्यं आयतन ६ (यज्ञ शाला) ७

चैत्यः जय स्तम्भ (फते की किल्ली) ८

चैत्य आश्रम साधुयोंके रहने का स्थान ९.

चैत्यःछात्रालयं - विद्यार्थियों के पढ़ने का स्थान १०

श्लोक)-चैत्यः[११]प्रसाद विज्ञेय, चेइ[१२]हरिरुच्यते चैत्यं [१३]चेतना नामस्यात्, चेइ[१४]सुधास्मृता।१। चैत्यं [१५]ज्ञानं समाख्यातं, चेइ [१६]मानस्य मानवं, चैत्यं [१७]यति रुत्तमः स्यात्, चेइ[१८]भगवनुच्यते ॥ २ ॥ चैत्यं [१९]जीव मवाप्नोति, चेइ [२०]भोगस्यारंभनं, चैत्यं [२१]भोगनिवर्तस्य, चैत्यं [२२]विनउ नीचउ ॥ ३ ॥ चैत्यः[२३]पूर्णिमा चन्द्रः, चेइ[२४]गृहस्यारंभनं, चैत्य [२५]गृह मगवाहं, चेइ[२६]गृहस्यछादनम्॥४॥ चैत्यं [२७]गृहस्तम्भो वापि, चेइ[२८]चवनस्पतिः, चैत्यं पर्वते [२९]वृक्षः, चेइ वृक्षस्थूलयोः ॥५॥ चैत्यं[३१]वृक्ष सारस्य, चेइ चतुः [३२]कोणस्तथा, चैत्यं [३३]विज्ञान पुरुषः, चेइ [३४]देहस्य

उच्यते ॥९॥ चैत्यं गुणज्ञो[३५] ज्ञेयः, चेइ च जिन शासनं[३६] इत्यादि ११२ । नाम अलंकार सुरेश्वर वार्तिकादि वेदान्ते शब्द कल्पद्रुम प्रथम खण्ड पृष्ठ ४६२ चैत्यं क्ली पुं आयतनम् यज्ञ स्थानं देवकुलं यज्ञायतनं यथा यत्र यूपा मणिमया श्चैत्या श्चापि हिरणमयाः चैत्य पुं करिभः कुञ्जरः इत्यादि और ग्रंथोंमें चले हैं।

अब इन पूर्वपक्षी हठ बादियों का पूर्वोक्त कथन कौन से पातालमें गया ।

(२०) पूर्वपक्षी–इस पूर्वोक्त लेख से तो चैत्य शब्द का ज्ञान और ज्ञानवान् यति आदिक नाम ठीक है परन्तु हम यह पूछते हैं कि मूर्ति पूजने में कुछ दोष है ।

उत्तरपक्षी–सूत्रानुसार षट्कायारंभादि दोष

हैं ही क्योंकि भगवत का उपदेश निरवद्य है यथा श्रीमद्आचाराङ्गजी सूत्र प्रथम श्रुत,स्कंध चतुर्थ अध्ययन सम्यक्त्वसार नामा प्रथम उदेशक ।

सेवेमि जेय अतीता जेय पडुपणा जेय आग मिस्साअरहंतभगवंता ते सव्वे एव माइ क्खंति एवं भासंति एवं पणवेंति एवं परूवेंति सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता ण हंत्तव्वा णअझावे यव्वा णपरिघे यव्वा णउद्दवे यव्वा एसधम्मे सुद्धः णितिए सासए समेच्च लोयं खेदणेहिं पवेदिते :-

अर्थ-गणधरदेव सूत्र कर्ता कहते भये जे अतीत काल जे वर्तमानकाल आगामि काल अर्थात् तीन काल के अरि हंत भगवंत ते सर्व ऐसे कहते हैं, ऐसे भाषते हैं ऐसे समझाते हैं

ऐसे उपदेश करते हैं सर्व प्राणी सर्व भूत सर्व जीव सर्व सत्त्व को अर्थात् स्थावर जंगम जीवों को मारना नहीं ताड़ना नहीं बांधना नहीं तपाना नहीं प्राणों से रहित करना नहीं यही धर्म्म शुद्ध है) नित्य है शाश्वत है, सर्व लोक केजाननेवालोंनेऐसा कहा है ॥इति॥

और दूसरा बड़ा दोष मिथ्यात्व का है,क्यों कि जड़ को चेतन मान कर मस्तक झुकाना यह मिथ्या है यथा सूत्र :-

(जीवेऽजीव सन्ना,अजीवे जीव सन्ना)इत्या दीनि अर्थ जीवविषय अजीवसंज्ञा अजीवविषय जीव संज्ञा, अर्थात् जीव को अजीव समझना अजीव को जीव समझना इत्यादि १० भेद मिथ्यात्वके चले हैं॥

(२१)पूर्ववक्षी–महा निशीथ सूत्रमें तो मंदिर

अनवाने वालोकेरीति १२ में देवलोक कहे है

उत्तरपक्षी—कहां सिद्धांत में तो ऐसा कहीं नहीं कहा है तुम मन पक्ष से कल्पित उदाहरण (हवाले) देके मूर्ति पूजा के आरंभ में हम विश्वास कराते हो।

पूर्वपक्षी–अजी वाह कल्पित बात नहीं है देखो निर्णय का पाठऔरअर्थ लिख दिखातेहैं.

(काउंपि जिणायणेहिं मंडिया सव्व मेयणिवहं दाणाइ चउक्केणं.सडो गच्छेज्जच्चुयं जाव॥

अर्थ–जिन मकान अर्थात् मंदिरों करके मंडितकरसर्वमेदिनी अर्थात् संपूर्ण भूमंडल को मंदिरों करके मण्डे (रचदे)दानादि चार करके अर्थात् दान शील तप भावना. इन चारों के करनेसे श्रावक जाय अच्युत १२में देव लोक तक।

उत्तरपक्षी–इस पूर्वोक्त पाठ अर्थ को तुम

अंतर दृष्टि से देखो और सोचो कि इसमें मंदिर वन वाने का खण्डन है कि मण्डन है अपितु साफ खण्डन किया है।

पूर्वपक्षी–है यह कैसे ॥

उत्तरपक्षी–कैसे क्या देख इस पाठ में मूर्ति पूजा के हठ करने वालों को मंदिर आदिक के आरंभ को न कुछ दिखाने के लिये मंदिर को उपमा वाची शब्दमें लाके दान, शील, तप, भावनाकी अधिकता दिखाई है, अर्थात् ऐसे कहा है कि मंदिरों करके चाहे सारी पृथ्वी भरदे तो भी क्या होगा दान शील तप भावना करके श्रावक १२ में देव लोक तक जाते हैं।

पूर्वपक्षी–उपमा वाची किस तरह जाना।

उत्तरपक्षी–यदि उपमा वाची न माने तो ऐसे सिद्ध होगा कि किसी श्रावकको १२ मा

देव लोक ही कभी न हुआ न होय क्योंकि इस पाठ में ऐसे लिखा है, कि संपूर्ण पृथ्वी को मंदिरों करके रच देवे अर्थात् मंदिरो करके भरे तव १२ में देव लोक में जाय सो न तो सारी मेदिनी (पृथ्वी) मंदिरों करके भरी जाय न १२ मां देव लोक मिले ताते भली भांति से सिद्ध हुआ कि सूत्र कर्ताने उपमादी है कि मंदिरों से वचा होगा दानादि,चार प्रकार के धर्म्म से देव लोक वामुक्ति होगी न तो सूत्र करता सीधा यों लिखता

(काउंपिजिणायणोहिं सढ्ढोगच्छेज्ज अच्चुयं) अर्थ जिन मंदिरों को बनवा के श्रावक १२ में स्वर्ग में जाय बस यों काहे को लिखा है, कि मंडिया सव्व मेयणी वट्टं, दाणाइचउक्केयेणं सढोगच्छेज्जअच्चुयं

अर्थ मंडित करे सारी मेदिनी मंदिरोंसे परन्तु दानादि चार करके १२ में देव लोक में जाय इत्यर्थः द्वितीय इसमें यह भी प्रमाण हैं कि प्रथम इस ही निशीथ के ३ अध्याय में मूर्त्ति पूजा का खण्डन लिखा है जिस का पाठ और अर्थहम २४ मेंप्रश्न के उतर में लिखें गे, ताते निश्चय हुआ कि यहां भी खण्डन ही है क्योंकि एक सूत्र में दो बात तो हो ही नहीं सकती हैं कि पहिले मूर्ति पूजा खण्डन पीछे मण्डन यदि ऐसा होतो वह शास्त्रहीक्या इत्यर्थः

(२२) पूर्वपक्षी—ठहर२ के क्यों जी (कयबलि कम्मा) इस पाठका अर्थ क्या करते हैं।

उत्तर पक्षी-हंस कर जो इसका अर्थ है स्नानकी पूर्ण विधिका सो करेंगे बलिकर्म बल वृद्धिकरनेके अर्थमें बल धातुसे बलिकर्म आदि

अनेक अर्थ होतेहैं यथा बलयति बलं करोति देह पुष्टौ यौगिकार्थश्चेति क्योंकि दक्षिण देशा दिकोंमें विशेष करके बलवृद्धिके लिये औषधियों केतेल मल मलके उबटना (पीठी) करकेस्नान करते हैं तथापि सूत्रों में सम्बंधार्थ है क्योंकि सूत्रों में जहां स्नान की विधि का संक्षेप से कथन आता है वहां ही कयबलिकम्मा शब्द आताहै और जहां स्नानकी विधिकापूराकथन लिखा है वहां वलि कम्मापाठ नहीं आता है तथा बलि, दान अर्थ में भी है, यथा शब्द कल्प द्रुम तृतीय काण्डे बलिः पुं बल्यते दीयते इति वलदाने तथा गृहस्थानां बलिरूप भूत यज्ञस्य प्रतिदिन कर्तव्य तथा तस्य विस्तृतिरुच्यते गृ-हस्थ से करने लायक पांच यज्ञोंमें से "भूत यज्ञ" बलिकम्र्म ततः कुर्य्यात्) यथा पञ्जाब

में भी व्याह के समय कुमार कुमारीको स्नान कराके कुछ दान देते हैं (वारा फेरा करते हैं) तथा नवग्रह बलिर्यथा (ग्रह आदिक का बल उतारने को भी दान करते हैं) इत्यादि तथापि कहीं,२ टीका टब्बामें रूढिसे कयबलि कम्मा का अर्थ घरकादेवपूजा लिखा है फिर पक्षपाती उसका अर्थ करते हैं कि श्रावकों का घरदेव तीर्थंकरदेव होता है और नहीं सो यह कहना ठीक नहीं क्योंकि तीर्थंकरदेवघरके देव नहीं होतेहैं तीर्थंकरदेवतो त्रिलोकीनाथदेवाधि देवहोतेहैं घरकेदेव तो पितर दादे यां,बाबे,भूत यक्षादि होते हैं, यथाकोईकुलदेवी(शाशनदेवी) कोईभैरूंक्षेत्रपालादिपूजते हैं॥ पूर्वपक्षी–श्रावक नेतो किसीदेवकासहायनहींवंछना॥ उत्तरपक्षी– सहायवंछना कुछऔरहोताहैकुलदेवकामानना

संसार खाते में कुछ और होता है तुम्हारे ही ग्रंथों में २४ भगवान् के शाशन यक्ष यक्षनी लिखे हैं उन्हें कौन पूजता है इत्यर्थः यदि तुम बलिकर्म काअर्थ देवपूजा करोगे तोजहांउवाइ जीसूत्रमें कौनक राजा तथा.कल्प में सिद्धार्थ राजाकी स्नान विधिका संपूर्ण कथन आयाहै, वहांवलिकम्मं पाठ नहींहै और जहां रायप्रश्नी में कठियारा अरणी की लकड़ी वालेने वन में स्नान किया जिस की तेल मलने आदिक की विधि नहीं खोली है,वहां वलि कर्म पाठ लिखा है, अब समझने की बात है, कि उस कठियारा पामरने तो घरदेव की वहां उजाड़ में पूजा करी जहां घर ना घर देव और उन उक्त उत्तम राजायों की देव पूजा उड़ गई, जो वहां कय वलि कम्मा पाठ ही नहीं,अरे भोले ऐसे हाथ

पैर मारनेसे क्या मंदिर मूर्ति पूजा जैन सूत्रों में सिद्ध होजाय गी, और क्या उक्त पाठ आदिक ओस की बूंदे टटोल २ के मंदिर पूजाके आरंभ की सिद्धि के आसा रूपी कुम्भको भर सकोगे, अपितु नहीं क्योंकि पूर्वोक्त गणधर आचार्य आगम ज्ञानी यदि मूर्ति पूजा को धर्म्म का मूल जानते तो क्या ऐसे भ्रम जनक शब्द लिखते और मंदिर मूर्ति पूजा का विस्तार लिखने में ही कलम खेंचते, परन्तु भगवान्का उपदेश ही नहीं मंदिर पूजादि मिथ्यारंभ का तो लिखते कहांसे क्योंकि देखो सूत्र उत्राध्ययन अध्ययन २९ में ७३ बोलों का फल गौतम जीने तप संयम के विषय में पूछे हैं, और भगवंतजीने श्रीमुखसे उत्तर फरमाये हैं और निशीथादि में साधु को बहुत प्रकार के व्यवहार वस्त्र पात्र

उपाश्रय आदि का लेना भोगना आहार पानी लेना देना बलिकि दिशा फिर के ऐसे हाथ पूछने धोने आदिक की विधि लिखदी है विधि रहित का दंड लिखदिया है परन्तु मूर्ति पूजाका न फल लिखा है न विधि लिखी है न ना,पूजने का दंड लिखा है,

(२३) पूर्वपक्षी-ग्रंथों में तो उक्तपूजादि के सर्व विस्तार लिखे हैं

उत्तरपक्षी-हम ग्रथों के गपौड़े नहीं मानते हैं हां जो सूत्र से मिलती बात हो उसे मान भी लेते हैं परन्तु जो सावद्याचार्यों ने अपने पास-स्थापनके प्रयोग अपनी क्रियायों के छिपाने को और भोले लोकों को वहकाकर माल खाने को मन मानें गपौड़े लिख धरे हैं निशीथ भाष्यवत् उन्हें विद्वान् कभी नहीं प्रमाण करेंगे ।

पूर्वपक्षी-इसमें क्या प्रमाण है कि ३२ सूत्र मानने और न मानने,

उत्तरपक्षी-इसमें यह प्रमाण है कि सूत्र नंदी जीमें लिखा है कि १० पूर्व अभिन्न बोधीके वनाये हुए तो सम सूत्र अर्थात् इसते कमती के वनाये हुए असमंजस क्योंकि १० पूर्व से कम पढ़े हुए के वनाये हुए ग्रथों में यदि किसी प्रयोगसे मिथ्या लेखभी होय तो आश्चर्य नहीं यथा :-

सुत्तं गणहर रइयं, तहेव पत्तेय वुद्ध रइयंच॥
सुयकेवलीणारइअं,अभिन्नदशपुव्विणारइयं॥१॥

अर्थ-सूत्र किस को कहते हैं गणधरों के रचाये हुये को तथा प्रत्येक वुद्धियों के रचे हुये को श्रुत केवली के रचे हुये को १० पूर्व संपूर्ण पढ़े हुये के रचे हुये को इत्यर्थः ताते ३२ सूत्रतो

उक्त आगम विहारियों के बनाए हुए हैं और जो रत्न सार शत्रुंजय महात्म्य आदि तथा १४४४ वा कितने ही ग्रंथ हैं वह सावद्याचार्यों के वनाये हुए हैं जिन्हों में साल संवत् का प्रमाण और कर्ता का नाम लिखा है अर्थात् पूर्वोक्त आगम विहारी आचार्यों के वनाये हुए नहीं है, थोड़े कालके वनाये हुए हैं उन में सावद्य व्यवहार पर्वत को तोड़ कर शिलाओं का लाना पंजावे का लगाना आदि आरंभ को जिनाज्ञा मानी है, अर्थात् सम्यक्त्व की पुष्टि कहते हैं, और जिन्होंमें केलों के थंभ कटा के बागों में से फूल तुड़वाके मंडप मंदिर बनवाने जिनाज्ञामानी है, जिन ग्रंथों के मान ने से श्री वीतराग भाषित परम उत्तम दया क्षमा रूप धर्म्म को हानि पहुंचती है, अर्थात् सत्य

दया धर्म्म का नाश करादिया है उन आचार्यों को पूर्व का सहस्रांश भी नहीं आता था तो उन के वनाये ग्रंथ सम सूत्र कैसे माने जायें।

पूर्वपक्षी–तुम निर्युक्तिको मांनते होकि नहीं,

उत्तरपक्षी–मांनते हैं परन्तु तुम्हारी सी तरह पूर्वोक्त आचार्यों की वनाई निर्युक्तियों के पोथे अनघड़ित कहानियें सूत्रोंसे अमिलत गपौड़ों से भरे हुये नहीं मानते हैं, यथा उत्तराध्ययन की निर्युक्ति में गौतमऋषि जी सूर्यकी किर्णा को पकड़ के अष्टा पद पहाड़पर चढ़ गये लिखा है आवश्यक जी की निर्युक्ति में सत्यकी सरीखे महावीर जी के भक्ता लिखे हैं इत्यादि वहुत कथन हैं क्योंकि जब इन पीताम्बरी मूर्ति पूजकों से कोई भोला मनुष्य जिसने सूत्रके तुल्य क्रिया करने वाले विद्वान् साधु कीसगत

न की हो और सूत्रों का व्याख्यान न सुना हों वह प्रश्न पूछे कि जी मूर्ति पूजा किस सूत्र में चली है? तव यह पीतांवरी दंभा धारी वड़े उत्साह से उत्तर देते हैं कि उत्तराध्ययन सूत्र में आवश्यक सूत्र में चलीहै, जव कोई विद्वान पूछे कि उत्तराध्ययन और आवश्यक सूत्रों में तो मूर्ति पूजन की गंधि भी नहीं है जैसे सम्यक्त्व शल्यो धार देशी भाषा पृष्ठ १२ वीं के नीचे लिखा है कि श्री उत्तराध्ययन सूत्र के नवम अध्ययन में लिखा है कि नमिनाम ऋषि की माता मदनरेखा ने दीक्षाली तव उस का नाम सुव्रता स्थापन हुआ सो पाठ (तीए वितासिं साहुणीणं, समी वेगहीया दि रका कय,सुव्वय नामा तव संयम, कुण माणी विहरइ) अव उन दंभियों से पूछो कि उक्त

सूत्र में तो यह लेख स्वप्नान्तर भी नहीं है तुम झूठ बोलकर सूत्रोंके नामसे क्यों मूर्खोंको फंसाते हो क्योंकि नवमे अध्ययन की ६२ गाथा हैं उसमें यह गाथा है ही नहीं तब कहते हैं हां उत्तराध्ययन आवश्यक सूत्र में तो नहीं है उत्तराध्ययनकी और आवश्यककी निर्युक्तिमें है अथवा कथा (कहानीयों) में है, भला पहिले ही क्यों न कह देते कि पूर्वोक्त निर्युक्ति में है, परन्तु जिनोंने जड़ पदार्थ में परमेश्वर बुद्धि स्थापन कर रक्खी है उनको तो झूठ ही का शरण है वैसे ही ग्रन्थों के प्रमाण देकर उत्तर देते हैं ॥ यथा

किसी ने पूछा कि तुम्हारे घर में कितना धन है तो उत्तर दिया कि मेरे जमाइ के मांवसा के साले के घर ५० लाख रुपया है, भला यह

उसकी धनाढ्यता हुई, ऐसे ही जिसका कथन प्रमाणीक सूत्रके मूल में नाम मात्र भी नहो और उसका सूत्र कर्ता के अभिप्राय से संबंध भी नहो उसका कथन टीका निर्युक्ति भाष्य चूरणी में सविस्तार कर धरना यथा इन पूर्वोक्त मूर्ति पूजक स्थिलाचारी आचार्यकृत शत्रुंजय महात्म्य, आदि ग्रंथों में गपौड़े लिखे हैं॥

सेतुज्जे पुडरीओ सिद्धो, मुणि कोडिपंच संज्जुत्तो, चित्तस्स पूणीमा एसो, भणइ तेण पुंडरिओ ॥ १ ॥

भावार्थ–ऋषभदेवजी का पुण्डरीक नामे गणधर पांचक्रोड़ मुनियोंके साथ शत्रुंजय पर्वत ऊपर सिद्धि पाया अर्थात् मोक्ष हुआ चेत शुदि पूर्णिमा के दिन तिस कारण से शत्रुंजय का नाम पुण्डरीक गिरि हुआ, ऐसे ही नमि विनमि

मुनि दो २ क्रोड मुनियों के साथ मुक्त हुए पांच पांडव २० क्रोड़ मुनियों के साथ मुक्त हुए इत्यादि अब देखिये कैसे बडे गपोड़े हैं, क्योंकि सूत्र समवायांगजी तथा कल्पसूत्रमें तो ऋषभ देवजीके साधुही कुल ८४ हज़ार लिखे हैं और नेमनाथजी के १८ हज़ार तो फिर ५ क्रोड़ और दो २ क्रोड़ सुनियों (साधुओं) कि फौज शत्रुं जय महात्म्य वाला कहांसे लाये लिखता है, यदि ऐसा कहोगे कि यह पूर्बक प्रमाण तो तीर्थंकर के निर्बाण पर किया हुआ लिखाजाता है पहिले बहुत होते हैं, तो हम उत्तर देंगे कि हां यह ठीक है कि पहिले अधिक होंगे परन्तु क्रोड़ों तो नहीं क्योंकि जिसके पुण्य योग सौ १०० मनुष्य की सम्प्रदाय होय अर्थात् किसी पुरुषके १०० बेटे पोते हुये तो उनमें से

उसके मरते तक पांच सात मरगये जब उसके मरजाने पर परिवार गिना गया कि इसके बेटे पोते कितने हैं तो कहा कि १०० परन्तु ७ तो मर गये ९३वें हैं तो कहाआनन्दजीवणमरण तों सबके ही साथ लग रहा है परन्तु भागवान् था जिसके ९३ वें बेटे पोते मौजूद हैं, बाग बाड़ी खिलरही है,यदि सो १०० में से ९० मरजाते, बाकी मरनेपर १० बचते तो बड़ा अफसोस होता कि देखो कैसा भाग्यहीन था जिसके १०० बेटे पोते हुये और मरते तक सारे खप गये बाकी १० ही रहगये इसी तरह क्या ऋषभ देव भगवान्के ५० वा ६० क्रोड़ चेले थे क्योंकि शत्रुंजय महात्म्य ग्रंथ कर्ता एक एक साधु के साथ में पांच२ क्रोड़ मुक्तिहुये लिखता है तो न जाने ऋषभदेवजी के कितने क्रोड़ साधु होंगे

तो क्या ऋषभदेवजी के निर्वाण पर ३०, ४० क्रोड़ भी न होते क्या लाखोंभी नहोते कुल ८४ हजार वस क्रोड़ों साधु एक समय (एक वक्त) एक ऋषि की संप्रदाय भतादि १० क्षेत्रोंमें नहीं होसक्तेहैं, यह सव मनमानि आंखमीच ग्रंथकर्ता गप्यें लगाते आये हैं, ऐसे मिथ्या वाक्योंपर मिथ्याती ही श्रधान करते हैं।

हमारे मतमें तो सूत्रानुसार निर्युक्तिमानी गई है जो नंदी जी तथा अनुयोग द्वार सूत्रमें लिखी है यथा सूत्र ।

सुतथ्थोखलु पढमो, बीओ निज्जुति मिसओ भणिओ ॥ तइओएनिरविसेसो, एसविहीहोइ अणुओगो ॥१॥ अर्थ

प्रथम सूत्रार्थ कहना द्वितीय निर्युक्तिके साथकहना अर्थात् युक्तिप्रमाणउपमा(दृष्टान्त)

देकर परमार्थ को प्रकट करना तृतीय निर्विशेष अर्थात् भेदानुभेद खोल के सूत्र के साथ अर्थ को मिला देना अर्थात् सूत्रसेअर्थका अविशेष (फ़रक) नरहे कि सूत्रों में तो कुछ और भाव है और अर्थ कुछ और किया गया है, एतादृश विधि से होता है अनुयोग अर्थात् ज्ञानका आगमन(मतलब का हासल) होना अब आंख खोल के देखो कि सूत्रानुसार यह इसप्रकार निर्युक्ति मानने का अर्थ सिद्ध है कि तुम्हारे मदोनमत्तों की तरहमिथ्या डिंभ के सिद्ध करने के लिये उलटे कल्पित अर्थ रूप गोले गरडाने का, यथा कोई उत्तराध्ययन जी सूत्र वाचने लगे तो प्रथम सूत्रार्थ कह लिया द्वितीय जो निर्युक्तियें नाम से वडे़२पोथे बना रक्खेहैं,उन्हें धर के वांचे तीसरे जो निरविशेप अर्थात् टीका

चूर्णी भाष्य आदि ग्रंथों की कोड़ि निचले उन्हें बांचे इस विधिसे ब्याख्यान होयसो ऐसा तो होता नहीं है ताते तुम्हारा हठ मिथ्या है।

पूर्वपक्षी– तुम नंदी जी में जो सूत्रों के नाम लिखे हैं उन्हें मानते हो कि नहीं ॥

उत्तरपक्षी–हमतो ४५।७२।८४ सब मानते हैं परन्तु यह पूर्वोक्त अभिनव ग्रंथ सावद्याचार्य्यों कृत नहीं मानते हैं, क्योंकि भद्रबाहू स्वामी लिख गये हैं कि १२ वर्षी काल में वहुत कालिकादि सूत्र विछेदजांयगे सो उन नंदी जो वालों में से आदि लेके ओर वहुत सूत्र विछेद गये हैं यदि कोई नंदी जी वाले सूत्रों के नाम में से नाम वाला ग्रंथ है भी तो वह पूर्वोक्त नवीन आचार्य्यकृत है क्योंकि उनमें सालसंवत् और कर्ता का नाम लिखा है इस कारण

गणधर कृत सूत्रों की तरह प्रमाणीक नहीं हैं इत्यर्थः ।

हे भ्राता जिस २ सूत्र में से पूर्वपक्षी चेइय शब्द को ग्रहण करके मूर्ति पूजा का पक्ष ग्रहण करते हैं उस २ का मैंने इस ग्रंथ में सूत्र के अनुसार संबन्ध से मिलता हुआ पाठ और अर्थ लिख दिखाया है, इसमें मैंने अपनी ओर से झूठी कुतर्कों का लगाना छति अछतिनिंदा का करना गालियों का देना स्वीकार नहीं किया है क्योंकि मैं झूठ बोलने वाले और गालियें देने वालों को नीच बुद्धि वाला सम-झती हूं ॥

(२९) पूर्वपक्षी—क्योंजी कहीं जैन सूत्रों में मूर्ति पूजा निषेध भी किया है।

उत्तरपक्षी–सूत्रों में तो पूर्वोक्त धर्म्म प्रबृति में मूर्ति पूजा का जिकर ही नहीं परन्तु तुम्हारे माने हुये ग्रंथोंमें ही निषेध है परन्तु तुम्हारे वड़े सावद्याचार्यों ने तुम्हे मूर्ति पूजा के पक्ष का हठ रूपी नशा पिला रक्खा है जिससे नाचना कूदना ढोलकी छैना खड़काना ही अच्छा लगता है और कुछ भी समझ में नहीं आता है

पूर्वपक्षी–कौन से ग्रंथ में निषेध है हमको भी सुनाओ।

उत्तरपक्षी–लो सुनो प्रथम तो व्यवहारसूत्रकी चूल का भद्रबाहु स्वामीकृत सोला स्वप्न के अधिकार पंचम् स्वप्न के फल में यथा सूत्र (पंचमे दुवा लस्सफणी संजुतोकएह अहि दिठो तस्स फलं तेणं दुवालस्स वास परिमाणदुक्का

लो भविस्सइ तत्थ कालीय सूयपमुहा सूयावो छिज्ज संति, चेइयं, ठयावेइ, दव्व आहारिणोमुणी भविस्सइ लोभेन मालारोहण देवल उवहाण उद्य मण जिण विंब पइ ठावण विहीउमाइएहिं वहवेतवपभावापयाइस्संतिअविहेपंथेपडिस्संति,

अर्थ पांचवें स्वप्न में वारां फणी काला सर्प देखा तिस का फल बारां वर्षी दुःकाल पड़ेगा जिसमें कालिक सूत्र आदिकमें से और भी बहुत से सूत्र विछेद जांयेंगे तिसके पीछे, चैत्य, स्थापना करवानें लगजांयेंगे द्रव्य ग्रहणहार मुनि होजायेंगे, लोभ करके मूर्ति के गले में माला गेर कर फिर उसका (मोल) करावेंगे, और तप उज्ज मण कराके धन इकट्ठा करेंगे जिन त्रिंव (भगवान की मूर्ति की) प्रतिष्टाकरावेंगे अर्थात् मूर्ति के कान में मंत्र सुना के उसे पूजने योग्य

करेंगे (परन्तु मंत्र सुनाने वाले को पूजें तो ठीक है क्योंकि मूर्तिको मंत्र सुनानेवाला मूर्तिका गुरु हुआ और चैतन्य है, इत्यादि और होम जाप संसार हेतु पूजा के फल आदि बतावेंगे, उलटे, पंथमें पड़ेंगे, इत्यादि इसका अधिक विस्तार हम अपनी बनाई ज्ञान दीपिका नाम पोथी के प्रथमभाग में लिख चुके हैं वहां से देख लेना उस में साफ़ मूर्ति पूजा निषेध है अर्थात् मूर्ति पूजाके उपदे-शकोंको कुमार्ग गेरने वाले कहा है, २ द्वितीय महा निशीथ ३ तीसरा अध्ययन यथासूत्र।

तहा किल अम्हे अरिहंताणं भगवंताणंगंध-मल्ल- पदीव समयणोवलेवण विचित वत्थ-वलिधुपाइएहिं पूजासक्कारेहिं अणुदियहम्, पञ्चवणंपकुव्वण तित्थुप्पणंकरेमि तंचणोणं

तहति गोयमा समणुजाणेज्जा सेभयवं केण अठेणं एवं वुच्चइ जहांणतंचणोणं तहति समणु जाणेज्जागोयमा तयत्था णुसारणंअसंयम बाहु ल्लेणंच मूल कम्मासवं मूल कम्मासवाउय अज्झवसाय पण्डुच बहुल्ल सुहासुह कम्मपयडी बंधो सव सावद्य विरियाणंच बयभंगोबयभंगे- णच- आणाइ कम्मं, आणाइ कम्मेणंतु उमग्ग गामित्तं उमग्ग गामित्तेणंच सुमग्ग पलायणं उमग्ग पवत्तणं सुमग्ग विप्पलोयणेण वद्धइणं महति आसायणा तेण अणंत संसारय हिंडणं एएणअठेणं गोयमाएवं वुच्चइ तंचणोणंतहति समणु जाणेज्जा ॥

अर्थ–तिम निश्चय कोई कहे कि मैं अरि- हंत- भगवंत की मूर्ति का गंधिमाला विलेपन धूप दीप आदिक विचित्र, वस्त्र और फल फूल

आदि से पूजा सत्कार आदि करके प्रभावना करूं तीर्थ की उन्नति करता हूं ऐसा कहने को हे गौतम सच नहींजानना भला नहींजानना, हे भगवन् किस लिये आप ऐसा फरमातेहोकि उक्त कथनको भलानहीं जानना;हे गौतम उस उक्त अर्थकेअनुसारअसंयमकीवृद्धि होयमलिन कर्मकीवृद्धिहोय शुभाशुभकर्म प्रकृतियोंकाबंध होय,सर्वसावद्यका त्याग रूप जोव्रत है उसका भंग होय,व्रतके भंग होनेसे तीर्थंकरजीकी आज्ञा उलंघन होय आज्ञा उलंघन से उलटे मार्गका गामी होय उलटे मार्ग के जाने से सुमार्गसे विमुख होय, उलटे मार्ग के जाने से सुमार्ग विमुख होने से, महा असातना वढे तिससे अनंत संसारी होय इस अर्थ करके गौतम ऐसे कहता हूं कि तुम पूर्वोक्त कथन को सत्य नहीं

जानना भलानहींजानना इति। अब कहो पाषा-णोपासको मूर्ति पूजा के निषेध करने में इस पाठमें कुछ कसरभीछोड़ी है, जिसकेउपदेशकों को भी अनंतसंसारी कह दियाहै, ३ और लो तृतीय विवाहचूलिया सूत्र१वांपाहुडा८वांउद्देशा अनुमान में ऐसा पाठ सुना जाता है॥

कइविहाणं भंते मनुस्सलोएपडिमा पण्णन्त गोयमा अनेग विहा पण्णता उसभादिय वद्ध माण परियंते अतीत अणागए चौवीसं गाणं तित्थयर पडिमा, राय पडिमा, जक्ख पडिमा, भूत पडिमा, जाव धूमकेउपडिमा.जिन पडिमा, णंभंतेवंदमाणे अच्चमाणे हंता गोयमा वंदमाणे अच्चमाणे जइणं भतेजिन पडिमाणं वंदमाणे अच्चमाणे, सुय धम्मं चरित धम्मं लभेज्जा गोयमा णोणटेसमटे सेकेणटेणंभंते एवंवुच्चइ

जिनपडिमाणं वंदमाणे अच्चमाणे सुयधम्मं चरितधम्मंनो लभेज्जा गोयमा पुढवि काय हिंसइ जावतस्स काय हिंसइ आउकम्म वज्जा सतकम्मपगडीउ सढिल वंधणय निगड़ वंधणं करित्ता जाव चाउरंत कंतार अणु परि यट्टयंति असाया वेयणिज्जं कम्मं भुज्जो २वंधई सेतेणठेणं गोयमा जावनो लभेज्जा ॥

अर्थ–हेभगवन् मनुष्य लोकमें कितने प्रकार की पड़िमा (मूर्ति) कही है गौतम अनेक प्रकार की कहीं हैं, ऋषभादि महावीर(वर्धमान) पर्यंत २४ तिर्थंकरों की, अतीत, अणागत चौवीस तीर्थंकरों की पड़िमा, राजाओं की पड़िमा, यक्षों की पड़िमा, भूतों की पड़िमा, जाव धूम केतु की पड़िमा, हे भगवान् जिन पड़िमा की वंदना करे पूजा करे, हां गौतम बंदे पूजे

हे भगवान जिन पड़िमा की वंदना पूजा करते हुए श्रुतधर्म्म,चारित्र धर्म की,प्राप्तिकरें, गौतम नहीं,किस कारण हे भगवन्! ऐसा फर-माते हो कि जिनपड़िमाकी वंदना पूजा करते हुये श्रुतधर्म,चारित्र धर्म की प्राप्ति नहीं करे, गौतम पृथ्वीकाय आदि छः कायकी हिंसा होती है तिस हिंसा से आयु कर्म वर्ज के सात कर्म्म कीप्रकृत्ति के ढीले बंधनों को करड़े बंधन करें ताते ४ गति रूप संसार में परिभ्रमण करे असाता वेदनी वार२ बांधे तिस अर्थ करके हे गौतम जिन पड़िमाके पूजतेहुए धर्म नहीं पावे इति इसमें भी मूर्ति पूजा मिथ्यात्व और आरंभ का कारण होनेसे अनंत संसारकाहेतु कहा है।

४ चतुर्थ, और सुनिये जिन वल्लभ सूरिके

शिष्य जिनदत्त सूरिकृत संदेहदोलावली प्रकरण में गाथा षष्टी सप्तमी :-

गड्डरि पव्वाहउं जेएंइ,नयरं दीसए वहुजणेहिं, जिणगिहकारवणाइ,सुत्तविरुद्धो अशुद्धोअ॥६॥

अस्यार्थः-भेड चालमें पड़ेहुये लोग नगरोंमें देखने में आते हैं कि (जिनगिह) मंदिर का वनवाना आदि शब्द से फल फूल आदिक से पूजा करनी यह सब सूत्र से विरुद्ध है अर्थात् जिनमत के नियमों से वाहर है और ज्ञानवानों के मत में अशुद्ध है॥ ६ ॥

सोहोइदव्वधम्मो, अपहाणो अनिव्वुई जणइ,सुद्धो धम्मो वीउं,महि उपडि सो अगामी हिं ॥७॥अर्थ-द्रव्य धर्म अर्थात् पूर्वोक्त द्रव्यपूजा सोप्रधान नहीं कस्मात्कारणात् किसलिये कि)

मोक्षसे परांग मुख अणुश्रोत्रगामी संसारमें भ्र-
माणेवालाहै,आश्रवके कारणसे दूजा भाव धर्म
अर्थात्भाव पूजासो शुद्ध मोटा धर्म है,कस्मात्
कारणात् प्रतिश्रोत्र गामी अर्थात् संसारसे वि-
मुख संवर होनेते, अब कहोजी पहाड़ पूजको
जिन वल्लभ सूरीके शिष्यजिनदत्त सूरीने मूर्ति
पूजा के खंडन में कुछ वाकी छोड़ीहै इसमें
हमारा क्या वस है और ऐसे वहुत स्थल हैं
परंतु पोथी के वढ़ाने की इच्छा नहीं क्योंकि
विद्वानोंको तो समस्या (इशारा ही वहुत है)
हे भव्यजीवों पक्षपात का हठ छोड़के अपनी
आत्मा को भव जल में से उभारनेके अधि-
कारी वनो।

(२५) पूर्वपक्षी–भलाजी कई कहते हैं कि मूर्तिपूजा
जैनियोंमें १२ वर्षी काल पीछे चलीहै कई कहते

हैं महावीर स्वामी क वक्त मेंभीथी और कई कहते हैं कि पहिलेसे हा चली आती है, यह कैसे है।

१ उत्तरपक्षी—जे। बारा वर्षी कालसे पीछे कहते हैं सोतो प्रमाणों से ठीक मालूम होता है हम अभी ऊपर मूर्ति पूजा निषेधार्थमें चार ग्रन्थों का पाठ प्रमाणमें लिख चुके हैं, जिसमें प्रथम स्वप्नाधिकार में १२ वर्षी काल पीछे ही मूर्ति पूजाका आरंभ चलाया लिखा है।

२ और जा महावीर स्वामी जी के समय में कहते हैं सो तो सिद्ध होती नहीं क्योंकि भगवती शतक १२ मा उद्देशा २ में जयन्ति समणो पासका अपनी भो-जाई मृगवती से कहती भई कि महावीर

स्वरूप तो कुछतो मैं ज्ञानदीपिका में लिखचुकी हूं और सम्यक्त्वशल्योद्धार और गप्पदीपिका को तुमही वांचके देखलो कि कैसी हैं और कैसे अर्थके अनर्थ हेतुके कुहेतु झूठऔर निंदा औरगालियें अर्थात् ढूंढियोंको किसी को दुर्गति पड़नेवाले,किसीको ढेढ चमार मोची मुसलमान इत्यादि वचनों से पुकारा है,हाथ कंगन को आरसी क्या। हांजो स्वपक्षीहैं वह तो फूलते हैं कि आहा देखो कैसी पण्डिताई छुंकिहै परन्तु जो निर्पक्षी सुज्ञजनहैं वह तो साफ कहतेहैंकि यह काम साधुओंके नहीं असाधुओं के हैं और जो प्रश्नोंके उत्तर दिये हैं और जो देते हैं सो ऐसे हैंकि पूर्वकी पूछो तो पश्चिमको दौड़ना कुपत्ती रन्न (लुगाई) की तरह वातको उलटी करके लड़ना। यथा किसीने प्रश्न किया कि तुम्हारे

पीताम्बरीयों के आमनाय वालों में किसी के मस्तकपर गोल टीका होता है किसीके लम्बी सीधीकील(मेष)सी खड़ी विंदली होतीह इसका कारण क्या?इसका उत्तर दिया कि तेरी माताने और घर किया तेरी वहन किसी के संग भाग गई तेरा नाना काणा है तेरी भूवाकी आंखमे तिलहै तेरे सांढूकी आंखमें फोलाहै तेरे मुखपर मक्खी मूतगई इत्यर्थः अब देखो कैसा यथार्थ उत्तर मिला इसी प्रकार के उत्तर गप्प दीपिका आदियों में समझ लेने। अधिक क्या लिखूं,हे भ्राता साधु और श्रावकनाम धराकर कुछ तो लाज निबाहनी चाहिये,क्योंकि झूठबोलना और गालियों का देना सदैव बुरा माना है॥

(२७) प्रश्न-हमारी समझ में ऐसाआता है

कि जो वेद मन्त्रोंको मानते हैं वह पुराणादिकों के गपौड़ों को नहीं मानते हैं और जोपुराणों को मानते हैं वह सब गपौड़ोंको मानते हैं ऐसे ही तुम जैनियों में जो सनातन ढूंडिये जैनी हैं वह मूल सूत्रों कोही मानते हैं पुराणवत् ग्रंथों के गपौड़े नहीं मानते हैं और जो यह पीले कपड़ों वाले जैनी हैं यह पुराणवत् ग्रंथों के गपौड़ोंको मानते हैं क्योंजी ऐसे ही है।

उत्तर-और क्या।

(२८) प्रश्न यह जो पाषाणोपासक आत्मा पंथीये अपने कल्पित ग्रंथों में कहीं लिखते हैं कि ढूंढिकमत, लोंके से निकलाहै, जिसको अनुमान साढ़ेचारसौवर्षहुये हैं, कहींलिखते हैं लव जी से निकला है जिस को अनुमान अढ़ाई सौ वर्ष हुये हैं यह सत्य है कि गप्प है।

उत्तर–गप्प है क्योंकि लोंके ने तो पुराने शास्त्रों का उद्धार किया है नतो नया मत निकला है नकोई नया कल्पित ग्रंथ बनाया है और लवजी स्थिला चारी यतियोंका शिष्य था उसने प्रमाणीकसूत्रों को पढ़कर स्थिला चारियों का पक्षछोड़के शास्त्रोक्त क्रियाकरनी अंगीकार की है लवजी ने भी न कोई नयामत निकाला है न कोई पीताम्बरियों की तरह अपने पोल लकोनेको अर्थात् अपनेचाल चलनके अनूकूल नये ग्रंथ बनाये हैं हां यह संवेग पीतांबर(लाट्ठा पंथ) अनुमान अढाई सौबर्ष सें निकला है।

पूर्वपक्षी–आपके उक्त कथनमें कोई प्रमाणहै

उत्तरपक्षी–प्रमाण बहुतहैं प्रथम तो आत्मा-राम कृत चतुर्थ स्तुति निर्णय भाग २ संवत-१९५२ वि० सन् १८९५ में अहमदाबाद के

युनियन प्रिंटिंग प्रैसमें छपाहै,इस ग्रन्थकी अं-
तिम पृष्ठमें कर्ताका नाम ऐसे लिखा है तप
गच्छा चार्य श्री श्री श्री१००८श्री मद्विजयानंद
सूरी विरचते।

इस ग्रन्थकी पृष्ठ३९पंक्ति५वीं से लेकर कई
पंक्तियोंमें यह लेख है कि उपाध्याय श्रीमद्यशो
विजयजीने तथा गणिसत्य विजय जीने किसी
कारण के वास्ते वस्त्र रंगे हैं तवसे लेकर तप
गच्छ के साधु वस्त्र रंगके ओढ़तेहैं परन्तुकोई
भी प्रमाणीक साधु यह नहीं मानते हैं कि श्री
महावीर स्वामी के शास्त्र में रंगके ही वस्त्र
साधुरक्खें और मेरी भी यही श्रद्धा है।

पृष्ठ ९ पंक्ति ५ मी में देखो क्या लिखते हैं
कि कुछ हमारे वृद्ध गुरुओं की यह श्रद्धा नहीं

थी कि साधुओं को रंगे हुए वस्त्र ही कल्पे हैं किसी कारण के वास्ते रंगे है सो कारणीक वस्त्र कोई वैसा ही पुरुष दूर करेगा फिर

पृष्ठ ३९ पंक्ति २४, में श्रीभगवंतके सिद्धांत में एकांत वस्त्र रंगने का निषेध नहीं है कारण यहहै कि एक मैथुन वर्ज्जके किसी भी वस्तु के करणे का निषेध नहीं हैं—यह कथन श्रीनि-शीथ भाष्य में है। तर्क, तुम्हारे इसलेख से तो झूठ बोलना चोरी करना कच्चा पानी पीना आदिक भी कारणमें ग्रहण करनासिद्ध होगया क्योंकि एक मैथुन वर्ज के सब करना लिखते हो और निशीथ भाष्यकाहवाला देतेहो वाह २ धन्य भाष्य धन्य आप ॥

अब विचारणाचाहिये कि इन पूर्वोक्तलेखसे सिद्ध हुआकि- श्री मह्महावीर स्वामिके साधुओं

का श्वेतवस्त्र धारणेकामार्ग है। और पीतांव-
रियों का कलिपत नया मत निकला हे क्योंकि
यशोविजय जी ने तो इसी लिये विक्रमीसंवत्
१७०० के अनुमान में श्वेत वस्त्र त्याग कर
रंग दार वस्त्र किये हैं जिस को २५० अढ़ाई
सौ वर्षका अनुमान हुआहै और फिर दूर करने
(छोड़ने) कोभी लिखाहै परन्तु देखिये इस कार-
णीक कल्पित (झूठे रंग दार वस्त्रोंके) भेष के
धारिणे का पीताम्बरीये कैसा हठ पकड़ रहे हें
और चरचा करते हैं कि महावीर जी के शासन
के वही साधु हैं जो पीले वस्त्र धारण करते हें
सो यह मिथ्यावाद हे ॥

द्वितीय आत्माराम ने केसरिये (पीले) वस्त्र
पहरने का मत निकाला क्योंकि इनके वड़े यति
लोक कईपीढ़ियें पलियाम्बरी(पलियारंग)वस्त्र

धारी रहेहैं कई काथी(कत्थरंग)वस्त्र धारी रहेहैं मनमानापंथजो हुआ। औरआत्मारामजीपहिले सनातन पूर्वोक्त ढूंढकमतका श्वेतांबरी साधुथा जब सूत्रोक्तक्रियानासधाई और रेलमेंचढ़नेको और दुशाले धुस्से ओढ़ने को दूर २ देशान्तरों से मोल दार औषधियों(याकूतियों) की डब्बियें मंगाकर खानेको विलटियां कराकेमालअसवाब रेलों में मंगा लेने को इत्यादिकोंको दिलचाहा तो ढूढक मत को छोड़ गुजरात में जाके संवत् १९,३२।३३ में पहिलेतो कथ रंगे वस्त्र धारेपीछे पीले करने शुरु किये।

तृतीय वल्लभविजय अपनी वनाई गप्प दीपिका संवत १९४८ की छपीमें पृष्ट १६पंक्ति १५में लिखता है कि१७००साल अर्थात् विक्रमी संवत्१७००के लग भग श्री सत्य गणि विजय

जी और उपाध्याय श्री यशो विजय जीने बहुत क्रिया कठन की और वैराग रंग में रंगे गये तब श्रीसंघ उनको संवेगी कहनेलगे इति । बस सिद्ध हुआ कि विक्रमी १७०० के साल में संवेग मत निकला पहिले नहीं था और इनके बड़ों को पहिले वैराग भी नहीं होगा क्योंकि धन विजय चतुर्थ स्तुति निर्णय प्रकाश शंकोद्धार पुस्तक संवत् १९४६ में अहमदा बादकी छपी में प्रस्तावना पृष्ट२९ पं०२०मीसे पृष्ठ २५वीं,तक लिखता है कि आत्माराम अपने गुरुओं के विषय में लिखताहै कि पहले परिग्रह धारीमहा व्रत रहितथे फिर पीछे निग्रंथपना अंगीकार किया. परन्तु किसी संयमीके पास चारित्रोपस्त पन् (फेरकेदिक्षा) लीनी नहीं इससे शास्त्रानु-सार इन्हें संयमी कहना योग्यनहीं और आत्मा-

रामजी आनन्दविजय जीका गुरु बूटेरायबुद्धि विजय जी अपनी वनाई मुख पत्ति चर्चा नाम पुस्तकमें अपने गुरुओंको परिग्रहधारी असाधु लिखतेहैं॥

(२९) प्रश्न–क्योंजो जैनसूत्रों में साधु को वस्त्र रंगने का निषेध है।

उत्तर–हां महावीरस्वामी के शासन में वहु मोल और रंगदार वस्त्र मने हैं। श्वेत मानो पेत१४ उपगरण आदि मर्यादा बृत्ति चली है निशीथ सूत्रमें जीव रक्षादि कारणात् गन्धि (खुशबो) के लिये आदिक लोद का वस्त्र पर रंग पड़जाय तो ३ चुली जलसहित से उपरंत लगा देवे तो दंड लिखा है और आचारांग जो सूत्र ७म, अध्ययन में वस्त्र का रंगना साफ़ मना है॥

और इन मूर्ति पूजकों में से ही धन विजय संवेगी अपनीकृत चतुर्थस्तुति निर्णयप्रकाश ग्रं-कोद्धारपृ०८१में लिखता है कि गच्छाचारपय-न्नाप्रमुखमां श्रीवीरसासनामां श्वेतमानो पेत वस्त्र को त्याग पीतादि रंगेला वस्त्र धारण करेतेसाधुने गच्छ में बाहर कहिये गाथा. ॥

जत्थय वारडियाणं तत्तडियाणंच तहयप-रिभोगं॥ मुत्तुं सुक्किल्ल वत्थं, कामेरा तत्थ गच्छंमि ८९ टीका तथा यत्र गच्छेवारडियाणंनि रक्त वस्त्राणां तत्तडियाणंनिनील पीतादि रंजित वस्त्राणां च परिभोगः क्रियते किं कृत्वे त्याह मुक्तापरित्यज्य किं शुक्ल वस्त्रं यति योगाम्बर मित्यर्थः तत्र कामेरतिःकानयोदा न काचिद पीतिहे अपि गाथा छंदमी ८९, ।

गणिगोयम अज्जा उचिअन्नेअवत्थविवज्जिउं,

सेवएचितरूवाणि, नसाअ उजाविआहिआ।
११२ अर्थ।

हे गौतम आर्या विश्वेत वस्त्र को छोड़ रंगे वस्त्र पहरे तो उस को जैनमत की आय न कहिये ११२ इत्यर्थः

(३०) प्रश्न-एक बात से तो हम को भी निश्चय हुआ कि सम्यक्त्व शल्योद्धारादि पुस्तक के बनाने वाले मिथ्यावादी हैं, क्योंकि सम्यक्त्व शल्योद्धार देशी भाषा की सम्वत् १९६० की छपी पृष्ठ एक १ में लिखा है कि ढूंडियामत अढ़ाई सौ वर्ष से निकला है और पृष्ठ ४ में लिखा है कि ढूंढिये चर्चा में सदा पराजय होते हैं।

परन्तु हम ने तो पंजाब हाते में एक नाभा पति राजा हीरासिंह की सभा में ढूंडिये और

पुजेरे साधुओं की चर्चा देखी है कि सम्वत् १९६१ ज्येष्ठ मास में वल्लभ संवेगी ने राजा साहिब बहादुर नाभा पति के पास जा कर प्रार्थना की कि मेरे ८ प्रश्नों का उत्तर ढूंढिये साधुओं से चाहे लिखित ले चाहे सभा में दिला दो तब राजा साहिब ने ढूंढिये साधुओं से पुछवाया कि तुम्हारी इच्छा हो तो उत्तर दे दो तब वहां बिहारीलाल आदिक अजीव मतिये ढूंढिये जो अपने चार क्षेत्रों के गृहस्थी सेवकों के आगे मेंमें करते फिरते हैं वह तो चले गये और पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज ने अपने पोते चेले श्री उदयचन्द जी को आज्ञा दी कि नाभा में प्रश्नोत्तर होयेंगे तब राजा की तर्फ से ८ मेंबर सम्बन्धी निश्चय किये गये कि जो यह न्याय करेंगे सो

ठीक तव अनुमान दिन १५ चर्चा करते रहे ज्येष्ठ वदि पंचमी को मिम्बरों ने राजा की आज्ञा से गुरुमुखी अक्षरों में विज्ञापन छपा कर फैसला दिया पृष्ट ३ पं० २१।२२।२३ में कि हमारी रायमें जो भेष और चिन्ह जैनियों के शिव पुराण में लिखे हैं वे सब वही हैं, जो इससमय ढूंडिये साधुरखते हैं दरअसल इबतदाई चिन्ह रखने ही उचित हैं, अबदेखिये इसमें तो पुजेरों की पराजय हुई फिर देखो हठवादी अपनी जड़बुद्धि को आत्मानन्द मासिक पत्र में प्रकट करते हैं कि तुम सच्चे हो तो छः प्रश्नों का उत्तर छपाके प्रकट करो भलाजी जिसचर्चा का फैसला छप के प्रकट हो चुका उस का उत्तर बाकी भी रहता है अब (वार २) करने से क्या होता है और इसमें यहभी सिद्ध

हुआ कि शिवपुराण वेदव्यासजीकी बनाई हुई लिखीहै तो वेद व्यासको हुये अनुमान ५हजार वर्ष कहते हैं तो जबभी जैनी ढूंढियेही थे संवेग नहीं थे क्योंकि शिवपुराण ज्ञान संहिता अध्याय २१ के श्लोक २।, ३ में लिखाहै ॥

मुण्ड मलिन वस्त्रंच कुंडिपात्र समन्वितं दधानं पुञ्जिकहाले चालयन्त पदेपदे ॥ २॥

अर्थ-सिरमुण्डित मैले (रजलगेहुये) वस्त्र काठके पात्र हाथमें ओघा पग २ देखके चलें अर्थात् ओघेसे कीड़ी आदि जंतुओं को हटाकर पग रक्खें ॥

वस्त्र युक्तं तथा हस्तं क्षिप्यमाणं सुखे सदा धर्मांति व्याहरन्ततं नमस्कृत्य स्थितं हरे ॥३॥

अर्थ-मुख वस्त्रका (मुखपत्ती) करके ढकेहुए सदा मुखको तथा किसी कारण मुखको के

अलग करें तो हाथ मुंहकेअगाड़ी देलैंपरंतुउघाड़े मुखन रहैं (नबोलै) और वल्लभविजयनाभेवाले ६प्रश्नोंमें १म,प्रश्न में लिखता हैकि दिन रात मुंह बन्धा रहे वा खुला रहे इति इससेयहसिद्ध हुआ है कि इसके शास्त्र में दिन रात दोनोंमें से एक में मुंह बांधना लिखा होगा परन्तु मुंह बांधने नहीं महुर्तमात्र भी क्योंकि धन विजय पूर्वोक्त चतुर्थ स्तुति निर्णय शंकोद्धारी प्रथम परिच्छेद पृष्ट४ पंक्ति७मी में लिखता है कि आतमा रामजी श्रीसोरठ देशने अनार्य कहवानो तथा मुखपत्ती व्याख्यान वेलाए बांधवी सारीछे (अच्छीहै) पण कारण थी बांधता नथी एहवा छलनां वचन बोली अभीनिवेश मिथ्यातना उदय केवल भोला लोकोने फंदमा नाखवा नोपंथ चला व्योछे पृष्ट ५ पंक्ति नीचे २में संवत्

१९४० सालमा आत्मारामजीए अहमदावाद समाचार छापामां व्याख्यानके अवसरे मोहपति वांधवी हम अच्छि जानतेहैं पर किसी कारण से नहीं बांधते हैं एहवो छराके विद्याशालानी वेठक नाश्रावकोए आत्मा रामजी ने पूछा साहेब ? आप मोहपटि वांधवी रूडी जानोछो तो वांधता केम नथी त्यारे आत्माजीए तेने पोताना रागी करवाने कह्योके हम इहां से- विहार करके पीछे वांधेंगे पणहजु नुधी बांधता नथी ते कारणथी आत्माराम जी नु लिखवो जुदोने वोलवो जुदो अने चालवो जुदो असमने भासन थयो इत्यादि। अवदेखोजैनसाधुका उस वक्त अर्थात् वेदव्यासके समयमेंभी यही भेष- धा ओघा, पात्रा, मुखपट्टी मैलेवस्त्र परन्तु पीलेवस्त्र हाथमें लाठा उघाडेमुख एसे जैनके

साधु व्यासजीने भी नहीं कहेतो फिरसिद्ध हुआ कि ढूंढक मत प्राचीनहै २५० वर्षसे निकला मिथ्या वादी द्वेषसे कहते हैं ॥

उत्तर-तुम्ही समझ लो ॥

(३१) प्रश्न-क्योंजी यह निंदारूप झूठ और गालियें दुर्बचनादियों से सहित पूर्वोक्त पुस्तक इखबार बनाते हैं छपाते हैं उन्हें पापतो जरूर लगता होगा।

उत्तर-अवश्य लगताहै क्योंकि बनानेवाला जब झूठ और निन्दाके लिखनेका अधिकारी होता है तब उसका अन्तःकरण मलीन होनेसे पाप लगता है और जो उनके पक्षी उसे वांचते हैं तब उसझूठकी स्तुति करते हैंकि आहा क्या

अच्छा लिखना है तब वहभी पापके अधिकारी होते हैं और जो दूसरे पक्षवाला वांचे तो वह वांचतेही एक वारतो क्रोधमें भरके योंही कहने लगताहै कि हमभी ऐसीही निन्दा रूप किताब छपायेंगे फिर अपने साधु स्वभाव पर आकर ऐसा विचारे कि जितना समय ऐसी निरर्थक निन्दारूप आत्माको मलीन करनेवाली पुस्तक बनानेमें व्यय करेंगे उतना समय तत्वके विचार व समाधिमें लगायेंगे जिससे पवित्रात्मा हो, इससे मौनही श्रेष्ट है ॥ यथा दोहा–

मूर्खका मुख बम्ब है बोले वचन भुजंग।
ताकी दारू मौनहै, विषे न व्यापे अंग ॥१॥

यह समझकर न लिखे परन्तु वांचतेहीक्रोध आनेसेभीतोकर्मबन्धे इसलिये पूर्वोक्त पुस्तक बनानेवाला आप डूबताहै और दूसरोंके डुबाने

का कारण होताहै इसलिये तुम्हारे कहने
संदेह नहीं परन्तु मेरी तो सब भाइयों से
प्रार्थनाहै कि न तो पूर्वोक्त पुस्तकें छापो औ
छपाओ क्योंकि जैनकी निंदा करनेको तो अ
मतावलम्बीही बहुतहैं फिर तुम जैनी ही परस्
निन्दा क्यों करते करातेहो शोक है आपसक
फूटपर क्या तुम नहीं जानते कि यह जैनधर्म
क्षांति दान्ति शान्ति रूप अत्युत्तम है, अनेक
जन्मोंके पुण्योदयसे हमको मिला है तो इससे
कुछ तप संयमका लाभउठायें औरझूठ कपटको
छोडें यद्यपि कलियुगमें सत्यकी हानीहैंतथापि
इतना तो चाहिये कि पक्षका हठ और कपट
की खटाईको घटमेंसेहटाकर विधि पूर्वक धर्म
प्रीतिसे परस्परमिलके शास्त्रार्थ किया करें धर्म
समाधिका लाभ उठाया करें मनुष्य जन्मका

यहही फलहै कि सत्यासत्यका निर्णयकरें परन्तु लड़ाईझगड़े न करने चाहियें। अपितुझूठबोलना और गालियें देनी तो सबको आती हैं. परन्तु धर्मात्माओंका यह काम नहीं बस सब मतोंका सार तो यहहैकि अशुभ कर्मोंको तजो और शुभ कर्मोंको ग्रहण करो अर्थात् हिंसा मिथ्या चोरी मद मांस अभक्षादिका त्याग अवश्य करो और दया दान सत्य शीलादि अवश्य ग्रहणकरो. काम क्रोध लोभ मोह अहंकार अज्ञानको घटायाकरो यत्न विवेकज्ञान क्षमा संयमको बढायाकरो अपने२धर्मसबन्धीनियमोंपरदृढ़रहोइत्यादि॥शुभम्

यदि इस पुस्तकके बनाने में जानने अजानने सूत्र कर्ताओंके अभिप्राय से विपरीत लिखागया होतो (मिच्छामिदुक्कडम्)॥

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

जैनधर्म के नियम ॥

सनातन सत्य जैनधर्मोपदेशिका

बालब्रह्मचारिणी जैनाचार्य्याजी।

श्रीमती श्री १००८ महासती

श्रीपार्वतीजी. विरचित।

जिस को

लालामेहरचन्द.लक्ष्मणदास श्रावक

सैद मिट्ठाबाजार लाहौर ने छपवाया।

सं० १९६२ वि०।

पञ्जाब एकोनामीकल यन्त्रालय में प्रिंटर

लाला लालमणि जैनी के अधिकार से छपा।

ठिकाना पुस्तक मिलनेका

मेहरचंद्र लक्ष्मणदास श्रावक

सैदमिठ्ठा बाज़ार,

लाहौर।

॥ ॐ श्रीवीतरागायनमः ॥

जैनधर्म के नियम।

१—परमेश्वर के विषय में।

१—परमेश्वरको अनादि मानते हैं अर्थात् सिद्धस्वरूप, सच्चिदानन्द, अजर, अमर, निराकार, निष्कलङ्क, निष्प्रयोजन, परमपवित्र सर्वज्ञ, अनन्तशक्तिमान् सदासर्वानन्द रूप परमात्मा को अनादि मानते हैं॥

२—जीवों के विषय में।

२—जीवोंको अनादि मानते हैं अर्थात् पुण्य पाप रूप कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता संसारी

अनन्त जीवोंको जिनका चेतना लक्षण है अ-
नादि मानते हैं ॥

३—जगत् के विषय में।

३-जड़ परमाणुओं के समूह रूप लोक (जगत्) को अनादि मानते हैं अर्थात् पृथिवी, पानी, अग्नि, वायु, चन्द्र सूर्यादि पुद्गलों के स्वभावसे समूह रूप जगत् १ काल (समय) २ स्वभाव (जड़ में जड़ता चेतनमें चैतन्यता) ३ आकाश (सर्व पदार्थों का स्थान) ४ इन को प्रवाह रूप अकृत्रिम (विना किसी के वनाये) अनादि मानते हैं ॥

४—अवतार।

४-धर्मावतार ऋषीश्वर वीतराग जिनदेवको जैनधर्मका वतानेवाला मानते हैं अर्थात् जि

धातु,का अर्थ जय, है जिसको नक् प्रत्यय होने से जिन, शब्द सिद्ध होता है अर्थात् राग द्वेष काम क्रोधादि शत्रुओं को जीत के जिनदेव कहाये,जिनस्यायं,जैनः अर्थात् जिनेश्वर देवका कहा हुआ जो यह धर्म है उसे जैनधर्म कहते हैं

५--जैनी।

५-जैनी मुक्तिके साधनों में यत्न करने वाले को मानते हैं। अर्थात् उक्त जिनेश्वर देव के कहे हुए जैनधर्म में रहे हुए अर्थात् जैनधर्म के अनुयायियों को जैनी कहते हैं॥

६--मुक्ति का स्वरूप।

६-मुक्ति, कर्म बन्ध से अबन्ध होजाने अर्थात् जन्ममरण से रहित हो परमात्म पदको प्राप्त कर सर्वज्ञता . सदैव सर्वानन्दमें रमन

रहने को मानते हैं अर्थात् मुक्ति के साधक धन और कामनीके त्यागी सत्गुरुओंकी संगत करके शास्त्र द्वारा जड़ चेतन का स्वरूप सुन कर सांसारिक पदार्थों को अनित्य (झूठे) जान कर उदासीन होकर सत्य सन्तोष दया दानादि सुमार्ग में इच्छा रहित चल कर काम क्रोधादि अप्गुणोंके अभाव होने पर आत्म ज्ञानमें लीन होकर सर्वारम्भ परित्यागी अर्थात् हिंसा मिथ्यादि के त्याग के प्रयोग से नये कर्म पैदा न करे और पुरःकृत (पहिले किये हुए) कर्मों का पूर्वोक्त जप तप ब्रह्मचर्यादि के प्रयोग से नाश करके कर्मोंसे अलग होजाना अर्थात् जन्म मरण से रहित होकर परमपवित्र सच्चिदानन्द रूप परमपदको प्राप्त हो ज्ञानस्वरूप सदैव पर मानन्दमें रमन रहनेको मोक्ष मानते हैं ॥

७–साधुओं के चिन्ह और धर्म

७–पञ्चयम (पांचमहाव्रत के) पालनेवालों को साधु कहते हैं अर्थात् श्वेतवस्त्र. मुखवस्त्रका मुख पर बांधना, एक ऊन आदि का गुच्छा (रजोहरण) जीव रक्षा के लिये हाथ में रखना, काष्ठ पात्र में आर्य गृहस्थियों के द्वारसे निर्दोष भिक्षा ला के आहार करना। पूर्वोक्त ५ पञ्चाश्रव हिंसा १ मिथ्या २ चोरी ३ मैथुन ४ ममत्व ५ इन का त्यागन और अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्म चर्याऽपरिग्रहयमाः इन उक्त (पञ्च महाव्रतोंका धारण करना अर्थात् दया १ सत्य २ दत्त ३ ब्रह्म चर्य ४ निर्ममत्व ५. दया. (जीव रक्षा) अर्थात् स्थावरादि कीटी से कुञ्जर पर्यन्त सर्व जीवों की रक्षा कर धर्ममें यत्न का करना १ सत्य (सच्च बोलना) २ दत्त (गृहस्थियों का दिया

हुआ अन्न पानी वस्त्रादि) निर्दोष पदार्थ का लेना ३ ब्रह्मचर्य (हमेशा यती रहना) अपितु स्त्री को हाथ तक भी न लगाना जिस मकान में स्त्री रहती हो उस मकान में भी न रहना। ऐसे ही साध्वी को पुरुष के पक्षमें समझ लेना ४ निर्ममत्व (कौड़ी पैसा आदिक धन) धातु का किंचित् भी न रखना ५ रात्रि भोजन का त्याग अर्थात् रात्रि में न खाना न पीना रात्रि के समय में अन्न पानी आदिक खान पान के पदार्थ का संचय भी न करना (न रखना) और नंगे पांव भूमि शय्या, तथा काष्ठ शय्या का करना फलफूल आदिक और सांसारिक विषय व्यवहारों से अलग रहना, पञ्च परमेष्टी का जाप करना धर्मशास्त्रोंके अनुसार पूर्वोक्तसत्य सार धर्म रीतिको ढूंढकर परोपकार के लिये

सत्योपदेश यथा बुद्धि करते हुये देशांतरों में विचरते रहना एक जगह डेरा बना के मुकाम का न करना. ऐसी वृत्तिवालोंको साधु मानते हैं

८–श्रावक (शास्त्र सुननेवाले) गृहस्थियों का धर्म।

८–श्रावक पूर्वोक्त सर्वज्ञ भाषित सूत्रानुसार सम्यग् दृष्टिमें दृढ़ होकर धर्म मर्यादामें चलनेवालों को मानते हैं अर्थात् प्रात काल में परमेश्वर का जाप रूप पाठ करना अभयदान सुपात्रदान का देना सायंकालादिमें सामायिक का करना. झूठ का न बोलना, कम न तोलना, झूठी गवाही का न देना. चोरी त्याग करना. पर स्त्री का गमन न करना. स्त्रियोंने परपुरुष को गमन न करना अर्थात् अपने पतिके अतिरिक्त

सवपुरुषोंको पिता बंधु के तुल्य समझना (द्यूत) जूएका न खेलना, मांसका न खाना, शराबका न पीना, शिकार (जीवघात) का न करना, इतना ही नहीं है वरंच मांस खाने, शराब पीनेवाले, शिकार (जीव घात) करने वाले को जातिमें भी न रखना अर्थात् उसके सगाई (कन्यादान) नहीं करना, उसके साथ खानपानादि व्यवहार नहीं करना, खोटा वाणिज्य न करना अर्थात् हाड़, चाम, जहर, शस्त्र आदिक का न वेचना और कसाई आदिक हिंसकों को व्याज पै दाम तक काभी न देना क्योंकि उनकी दुष्ट कमाई का धन लेना अधर्म है ॥

९--परोपकार।

१--परोपकारसत्य विद्या (शास्त्रविद्या) सीखने सिखाने पूर्वोक्त जिनेन्द्र देव भाषित सत्य

शास्त्रोक्त जड़ चेतन के विचार से बुद्धि को निर्मल करने में जीव रक्षा सत्य भाषणादि धर्म में उद्यम करने को कहते हैं ॥ यथा :-

दोहा-गुणवंतोंकी वंदना, अवगुण देख मध्यस्थ।
दुखी देख करुणाकरे, मैत्रीभाव समस्त १

अर्थ-पूर्वोक्त गुणोंवाले साधु वा श्रावकों को नमस्कार करे और गुण रहित से मध्यस्थभाव रहे अर्थात् उस पर राग द्वेष न करे २ दुखियों को देख के करुणा (दया) करे अर्थात् अपना करके धर्म रख के यथा शक्ति उनका दुःख निवारन करे ३ मैत्री भाव सबसे रखे अर्थात् सर्व जीवों से प्रियाचरण करे किसी का बुरा चिंते नहीं ॥ ४ ॥

१०—यात्रा धर्म।

१०-यात्रा सम्यक्त्व संघ तीर्थ दर्शन कर

तीर्थों) का मिल के धर्म विचार का करना उसे यात्रा मानते हैं अर्थात् पूर्वोक्त साधु गुणों का धारक पुरुष साधु १ तैसे ही पूर्वोक्त साधु गुणोंकी धारिका स्त्री साध्वी २ पूर्वोक्त श्रावक गुणोंका धारक पुरुष श्रावक ३ पूर्वोक्त श्रावक गुणों की धारिका स्त्री श्राविका ४ इनको चतुर्विध संघ तीर्थ कहते हैं इनका परस्पर धर्म प्रीति से मिल कर धर्म का निश्चय करना उसे यात्रा कहते हैं और धर्म के निश्चय करने के लिये प्रश्नोत्तर कर के धर्म रूपी लाभ उठाने वाले (सत्य सन्तोष हासिल करने वालों) को यात्री कहते हैं अर्थात् जिस देश काल में जिस पुरुष को सत् संगतादि करके आत्मज्ञान का लाभ हो वह तीर्थ । यथा चाणक्य नीति दर्पणे अध्याय १२ श्लोक ८ में :-

साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थं भूताहि साधवः ।
कालेन फलते तीर्थं, सद्यः साधुसमागमः ॥

अर्थ–साधु का दर्शन ही सुकृत है साधु ही तीर्थ रूप है तीर्थ तो कभी फल देगा साधुओं का संग शीघ्रही फलदायक है। १ । और जो धर्म सभा में धर्म सुन ने को अधिकारी आवे वह यात्री । २ । और जो धर्म प्रीति और धर्म का बधाना अर्थात् आश्रव का घटाना सम्बर का बधाना (विषयानन्द को घटाना आत्मानन्द को बधाना) वह यात्रा । ३ । इन पूर्वोक्त सर्व का सिद्धान्त (सार) मुक्ति है अर्थात् सर्व प्रकार शारीरी मानसी दुःख से छूट कर सदैव सर्वज्ञता आत्मा आनन्द में रमता रहे॥

॥ इति दशनियमः ॥ शुभम् ॥

ॐश्रीवीतरागानमः

ज्ञानदीपिका (जैनोद्योत) ग्रंथ

"सत्यधर्मोपदेशिका-बालब्रह्मचारिणी
श्रीमतीपार्वती सतीजी विरचिता"।

द्वितीया वृत्ति।

विज्ञापन।

हमारे प्यारे जैनी भाइयोंको प्रकट हो कि जैनतत्त्वादर्श ग्रन्थ जोकि महाराज श्रीआत्माराम साधुजीने बनाया है उसके पढ़ने वा सुनने से कई एक भाइयोंकी धर्म विषयक श्रद्धा में फर्क आगया है इस हेतु से श्रीमती पार्वती जी महाशयाबालब्रह्मचारिणीसतीनेलोगोंके उपका-

रार्थ, **ज्ञानदीपिका** ग्रन्थ ऐसीसरलभाषा में बनाया है (जिस में संक्षेपमात्र सत्यासत्य और धर्माधर्म का निरूपणकिया है) कि अल्प बुद्धिजन भी उसको देखकर ठीक ठीक सत्य मार्गपर आजावें ॥ इस ग्रंथ में सूत्रोंके प्रमाण भी दिये गये हैं और श्रावकके कर्मों और अ-कर्मोंका तथा सामायिक विधिकाप्रमाणसहित निरूपण किया हुआ है, इसलिये निश्चय है कि आप लोग पक्षपातको छोड़ तत्त्व दृष्टि से इस ग्रन्थको विचारकर भवसागर के पार उतर नेके लिये धर्मरूपी नौकाके ऊपर आरूढ हो कर इस दुःख बहुल जन्मको सफल करेंगे ॥

यह पुस्तक बहुत उत्तम अक्षरोंमें और मोटे कागज़पर छप कर त्यार होगया है विलायती

कपड़े की जिल्द त्यार हुई है और इस पुस्तक का दाम -।।।- रु० और महसूल २ आना है। जो महाशय इस पुस्तकको खरीदना चाहें वे अपना नाम, मुकाम डाकखाना, और जिला बहुत शीघ्र नीचे लिखे पते पर भेज देवें 'पत्र' पहुंचनेपर तत्काल पुस्तक भेज दिया जावेगा।

पुस्तक मिलने का ठिकाना :-

मेहरचंद्र लक्ष्मणदास

संस्कृत पुस्तकालय सैद मिट्ठाबाजार।

लाहौर पञ्जाब।

नोट।

लाला गंगाराम मुन्शीराम श्रावक हुश्यार-पुर वासी ने इस पुस्तक के छपवाने में हम को वहुत सहायता दी, जिसके लिये हम इनका धन्यवाद करते हैं।

भारतभर में सब से बड़ा संस्कृत भाषा पुस्तकों का सूचीपत्र।

महाराज जी ?

आपकी सेवा में निवेदन किया जाता है कि हमारे प्राचीन संस्कृत पुस्तकालय का सूची पत्र जिसकी कि आप लोग बहुत कालसे देखने की इच्छा करते थे आज ईश्वर की कृपा से ३ वर्ष की मेहनत के वाद बड़े २ प्रसिद्ध पंडितों की सहायता से त्यार होकर मुम्बई से छप कर